संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
ऋषि प्रसाद
हिन्दी
वर्ष : ९
अंक : ६९
सितम्बर १९९८
पू. बापू का आत्म-साक्षात्कार दिवस
२२ सितम्बर
आत्मानंद में मस्त हैं,
करें वेदान्ती खेल।
भक्ति-योग और ज्ञान का,
सद्गुरु करते मेल ॥
पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ९
अंक : ६९
९ सितम्बर १९९८

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क
भारत, नेपाल व भूटान में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) आजीवन : रू. ५००/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 30
(२) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं पूर्वी प्रिन्टर्स, राजकोट में छपाकर प्रकाशित किया।

इस अंक में

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग : YES चैनल पर 'सत्संग सुधा' रोज सुबह ८.३० से ९ एवं दोपहर १.३० से २.
SONY चैनल पर 'ऋषि प्रसाद' रोज सुबह ७.३० से ८.

आश्रम विषयक जानकारी
Internet पर उपलब्ध है : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

गुरुमंत्र-दीक्षा

दीक्षा त्वया नाधिगता विमूढ !
दीक्षां विना नास्ति नरस्य मुक्तिः ।
अन्धः स्वयं धावति राजमार्गे
परं सुरक्षा न हि निश्चिताऽस्ति ॥१॥
भवस्य बोधो न गुरुं विना स्यात्
बोधं विना नैव भवाब्धिमुक्तिः ।
दिशा विहीना तरणी समुद्रे
कदापि नूनं न तटं प्रयाति ॥२॥
धनेन मानेन पदेन कोऽपि
नाप्नोति दीक्षां गुरुणा कदापि ।
श्रद्धान्विताः सौम्यगुणैरुपेताः
विनीतशिष्या हि फलं लभन्ते ॥३॥
यो ब्रह्म विद्यासु विशेष दक्षः
संसारमायापरिवर्जितश्च ।
परोपकारी भवतापहारी
एवं विधः कोऽपि गुरुर्विधेयः ॥४॥

रे मूढ़ मनुष्य ! तुमने गुरुमंत्र-दीक्षा प्राप्त नहीं की ? इस संसार में दीक्षा के बिना इस सांसारिक आवागमन से मनुष्य की मुक्ति नहीं हो सकती। यदि कोई अन्धा व्यक्ति स्वयं अकेला सड़क पर दौड़ रहा है, तो वह दौड़ तो सकता है किन्तु उसकी सुरक्षा निश्चित नहीं है। उसके साथ दुर्घटना हो सकती है। (१)

गुरु के बिना इस संसार के रहस्य विषयक ज्ञान नहीं हो सकता और ज्ञान के बिना जीव की मुक्ति नहीं हो सकती। जैसे दिशाविहीन नौका गहन समुद्र में कभी भी तट को प्राप्त नहीं कर सकती। (२)

धन, मान या पद से कोई गुरु से दीक्षा प्राप्त नहीं कर सकता। दीक्षा तो श्रद्धावान् सौम्य गुणवाले विनीत शिष्य ही प्राप्त कर सकते हैं। (३)

जो ब्रह्मविद्या में विशेष दक्ष हों और संसार की माया से रहित हों, परोपकारी और सांसारिक तापों का हरण करनेवाले हों, ऐसे पुरुष को ही अपना गुरु बनाना चाहिये, अन्य को नहीं। (४)

- जगदीशचंद्र शास्त्री
सिरसा, हरियाणा।

*

जाग मुसाफिर

भोर हुआ अब जाग मुसाफिर
व्यर्थ समय क्यों खोता है ?
मूल्य समय का जो न जानता
वह पछताता रोता है ॥
जाग जाग उठ, देख दिवाकर
तुझसे हाथ मिलायेगा ।
सावधान ! अब ऐसा अवसर
फिर न सहज ही पायेगा ॥
ज्ञानामृत की शुचि गंगा में
मन-जीवन को धोता चल ।
सात्त्विक श्रद्धा की धरती पर
बीज प्रेम के बोता चल ॥
भूल गया तू क्यों अपनेको
भौतिकता की राहों में ।
आहों के ही फल लगते हैं
बहुत विषयों की चाहों में ॥
पछताना फिर पड़े न जिससे
वही सुपथ अपना ले तू ।
प्रभु के पद 'मधुरेश' पकड़कर
जीवन सफल बना ले तू ॥

- भानुदत्त शास्त्री 'मधुरेश'
उन्नाव (उ.प्र.)

[ता. २२-९-९८ : पू. बापू के आत्म-साक्षात्कार दिन पर विशेष]

जीवन का परम लक्ष्य

* आत्म-साक्षात्कार *

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥

'हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनों को भस्ममय कर देती है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्ममय कर देती है।'

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥

'इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र निःसंदेह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञान को कितने ही काल से कर्मयोग के द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने-आप ही आत्मा में पा लेता है।'

(गीता : ४.३७,३८)

यहाँ भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को जिस ज्ञान का उपदेश दे रहे हैं वह ज्ञान है आत्मज्ञान। आत्मज्ञान से अधिक पवित्र और कुछ भी नहीं है। आत्मज्ञान पाप-ताप को नष्ट करता है, अज्ञान को मिटाता है, जन्म-मृत्यु के विषचक्र से मुक्त करता है, जीव में से शिव बनाता है, नर में से नारायण बनाता है। यह आत्मज्ञान निज स्वरूप को प्रकट करता है, सत्य में प्रतिष्ठित कराता है। जिसको एक बार भी इस ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है उसे मृत्यु डरा नहीं सकती, कर्मों के बंधन बाँध नहीं सकते, त्रिताप सता नहीं सकते। ऐसे आत्मारामी ज्ञानी पर किसी भी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति का प्रभाव नहीं पड़ता। निन्दा-प्रशंसा, राग-द्वेष, पाप-पुण्यों से परे स्थित ऐसे ज्ञानी के लक्षण बताते हुए भगवान शिव 'श्रीगुरुगीता' में कहते हैं :

ब्रह्मानंदं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतम्।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि॥

'जो ब्रह्मानंदस्वरूप हैं, परम सुख देनेवाले हैं, जो केवल ज्ञानस्वरूप हैं, (सुख-दुःख शीत-उष्ण आदि) द्वन्द्वों से रहित हैं, आकाश के समान सूक्ष्म और सर्वव्यापक हैं, तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के लक्ष्यार्थ हैं, एक हैं, नित्य हैं, मलरहित हैं, अचल हैं, सर्वबुद्धियों के साक्षी हैं, भावना से परे हैं, सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों से रहित हैं ऐसे श्री सद्गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।'

ब्रह्मानंद की मस्ती में मस्त ज्ञानी परम सुख के, परम आनंद के दाता हैं। ज्ञानी सर्वश्रेष्ठ दाता हैं। देवता लोग भी याचक बनकर ज्ञानी के पास आते हैं।

भगवान बुद्ध को जब आत्मा में विश्रांति मिली तब वे एकदम शांत हो गये और अपने आत्मानंद में मस्त रहने लगे। देवताओं को चिन्ता होने लगी कि भगवान बुद्ध अपने को मिला हुआ आत्म-अमृत बाँटने के बजाय चुप होकर बैठ गये हैं, मौन हो गये हैं ! उन्होंने भगवान बुद्ध से प्रार्थना की :

''हे भंते ! जगत के जीवों के उद्धार के लिए कृपया आप आत्मबोध की गंगा बहाओ।''

अपने आत्मस्वरूप में स्थित बुद्ध ने जवाब दिया :

''आम लोगों को मेरा यह अनुभव समझ में नहीं आयेगा और जो इस ज्ञान के अधिकारी होंगे

वे मेरे सामने बैठकर ही शान्ति और तृप्ति पाएँगे।''

देवता लोग चुप हो गये। परस्पर विचार-विमर्श करके पुनः बुद्ध के पास आये और प्रार्थना की :

''हे बोधिसत्त्व! आपकी बात पूर्णतः तर्कसंगत एवं सत्य है । उत्तम प्रकार के साधकों के लिए आपश्री के केवल दर्शन ही पर्याप्त हैं। उनके लिए कुछ बोलना आवश्यक नहीं है और अनधिकारी के आगे बोलना व्यर्थ है क्योंकि वे कुछ समझ नहीं पाएँगे। किन्तु भंते ! इन दो कक्षाओं के बीच एक मध्यम प्रकार के लोग भी हैं। वे इतने उत्तम साधक भी नहीं हैं जो आपके दर्शनमात्र से लाभान्वित हो सकें और इतने पामर भी नहीं जो आपकी बात समझ ही न सकें। उन लोगों के उद्धार का क्या ?

जो लोग उत्तम जिज्ञासु भी नहीं हैं और बिल्कुल पामर भी नहीं हैं उन मध्यम प्रकार के लोगों की संख्या तो विशाल है। ऐसे लोगों के लिए आपकी प्रेरणादायी वाणी साधना-पथ को प्रकाशित करनेवाली सिद्ध होगी ।

आपके निकट बैठकर अत्यंत उत्तम प्रकार के साधक लाभ ले सकते है और कनिष्ठ प्रकार के लोग आपको सुनने पर भी अपनी हल्की वासनाओं, हल्की समझ, हल्के आकर्षणों के कारण आपका लाभ नहीं पचा सकेंगे, यह बात हम मानते है । किन्तु हे भंते ! इन दोनों के बीच मध्यम प्रकार के ये बहुसंख्यक लोग आपको सुनकर आपके उपदेश को तुरंत ही अमल में या अनुभूति में नहीं ला सकेंगे लेकिन साथ-ही-साथ उसे व्यर्थ गँवा भी नहीं देंगे । वे धीरे-धीरे आगे बढ़ेंगे। ऐसे मध्यम प्रकार के लोगों के लिए आप अवश्य अवश्य कृपा करें।''

भगवान बुद्ध को बात जँच गई। तभी से जगत के जीवों के कल्याण के लिए वे जीवन के आखिरी श्वासों तक सत्संग करते ही रहे ।

ज्ञानी प्राणिमात्र के परम हितैषी एवं सुहृद होते हैं । अपने जीवन की भी परवाह न करते हुए वे अपना आत्म-खजाना लुटाते ही रहते हैं।

ज्ञानी की महिमा अनंत है । ज्ञानी के वचन शास्त्र बन जाते हैं । उनके वचनों का पालन करनेवाले का कल्याण हो जाता है ।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

'श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य लोग भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण स्थापित कर देता है, समस्त मनुष्य-समुदाय उसके अनुसार बरतने लग जाता है ।'

(गीता : ३.२१)

आत्मा-परमात्मा का ज्ञान हो जाने के बाद ज्ञानी को कुछ जानना शेष नहीं रह जाता, कुछ पाना शेष नहीं रह जाता, कुछ भोगना शेष नहीं रह जाता ।

एक जिज्ञासु ने रामकृष्ण परमहंस से पूछा :

''ठाकुरजी ! सबसे बड़ा भोगी कौन ?''

जिज्ञासु ने सोचा था कि ठाकुरजी किसी संसारी को सबसे बड़ा भोगी कहेंगे । लेकिन ठाकुरजी ने कहा :

''सबसे बड़ा भोगी है ज्ञानी। वह सारे ब्रह्माण्ड को अपने भीतर ही महसूस करता है । 'विश्व में भोग भोगनेवाले समस्त जीव मेरा ही स्वरूप हैं' ऐसा उसका अनुभव होता है । अतः ज्ञानी जैसा भोग भोग सकता है ऐसा भोग दूसरा कोई जीव नहीं भोग सकता । संसारी तो बिल्कुल छोटे-से खड्डे में मेढक की तरह उछलता-कुदता रहता है।''

जिज्ञासु : ''तो ठाकुरजी ! सबसे बड़ा त्यागी कौन ?''

रामकृष्ण परमहंस : ''सबसे बड़ा त्यागी संसारी है। अखिल ब्रह्मांड में महान् से भी महान् और श्रेष्ठों से भी श्रेष्ठ अगर कुछ प्राप्त करने जैसा हो तो वह है परमात्म-तत्त्व। इस महान् तत्त्व को त्यागकर बैठा हुआ संसारी ही महान् त्यागी कहा जायेगा न ! संसारी परमात्मा को त्यागकर सब नश्वर क्षुद्र चीजों को पकड़कर बैठा है। बताओ, उससे बड़ा त्यागी तुम्हें कौन मिलेगा ?''

ऐसा पवित्रतम ज्ञान प्राप्त करने का विशेषाधिकार कुछ व्यक्तियों का ही है, ऐसा नहीं है। आत्म-साक्षात्कार हर मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। आज नहीं तो कल, इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में, अगले जन्म में नहीं तो लाखों जन्मों के बाद भी यह ज्ञान तो पाना ही पड़ेगा। ऐसे ही इस जन्म में नहीं पाओगे तो प्रकृति छूरी की नोंक पर इस मार्ग पर चलाये बिना नहीं छोड़ेगी।

हमें केवल अपनी योग्यता विकसित करना है। क्रमशः अपनी योग्यता बढ़ाते जाएँगे तो इसी जन्म में काम पूर्ण हो जाएगा।

अब प्रश्न उपस्थित होगा कि आत्म-साक्षात्कार कैसे करें ?

आत्म-साक्षात्कार का सर्वप्रथम सोपान है श्रवण। ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मश्रोत्रिय, परम तत्त्व का ज्ञान पाये हुए महापुरुष से आत्मज्ञान के उपदेश का श्रवण करना।

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है :

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

'उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ। उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक उन्हें प्रश्न करने से वे परमात्मतत्त्व को भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे।' (गीता : ४.३४)

ऐसे ज्ञानी महापुरुष भी अति दुर्लभ होते हैं।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

'बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त पुरुष 'सब कुछ वासुदेव ही है' - इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।' (गीता : ७.१९)

ऐसे जीवन्मुक्त तत्त्वज्ञानी महात्माओं के संग एवं सत्संग से परमात्मज्ञान एवं परमात्मप्राप्ति के अनेक दृष्टांत मिलते हैं। महात्मा हारितद्रुम गौतम के संग से जाबालपुत्र सत्यकाम को ज्ञानप्राप्ति हुई थी। सत्यकाम का सत्संग सुनकर उपकोसल को ज्ञान हुआ था। प्राचीनशाल, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जन एवं बुडिल नामक पाँच ऋषि महात्मा उद्दालक एवं राजा अश्वपति के संग से ज्ञानी हो गये थे। देवर्षि नारद को सनत्कुमारों से ज्ञानप्राप्ति हुई थी। धर्मराजा ने नचिकेता को, जड़भरतजी ने रहूगण राजा को एवं याज्ञवल्क्य मुनि ने मैत्रेयी को ज्ञान की दीक्षा दी थी।

गोस्वामी तुलसीदासजी 'श्रीरामचरितमानस' में ज्ञानी महापुरुषों के संग की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि :

सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥
बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई॥

(श्रीरामचरित० बालकाण्ड : २.३,४)

सत्संग के प्रभाव से बुद्धि, कीर्ति, सद्‌गति ऐश्वर्य आदि सब मिलता है। वेदों में एवं लोकों में इनकी प्राप्ति का और कोई साधन नहीं है। सत्संग के बिना विवेक जागृत नहीं होता। श्रीरामचंद्रजी की कृपा के बिना सत्संग सहज में नहीं मिलता। सत्संगति आनंद एवं कल्याण का मूल है। सत्संग की प्राप्ति ही फल है, और सब फूल-पत्ते हैं। जिस प्रकार पारसमणि के स्पर्श से लोहा सुवर्ण बन जाता है उसी प्रकार दुष्ट मनुष्य भी सत्संग से साधु बन जाता है।

अतः सत्संग की सरिता में मन को स्नान कराकर उसे पवित्र बनाते रहना चाहिए। जो सत्संग नहीं करता वह कुसंग जरूर करता है।

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥

'भगवत्संगी यानि भगवत्प्राप्त महात्मा के क्षणमात्र के सत्संग के साथ स्वर्ग तो क्या मोक्ष की भी तुलना नहीं हो सकती तो संसार के तुच्छ

भोगों की तो बात ही क्या ?'

आत्म-साक्षात्कार के पूर्व तीन सोपान हैं : श्रवण, मनन और निदिध्यासन।

संतों का उपदेश सुनना श्रवण है। शास्त्रों का पठन भी एक प्रकार से श्रवण ही है। पठन एवं श्रवण किये हुए शास्त्र का नित्य मनन करते रहना यह आत्म-साक्षात्कार का द्वितीय सोपान है।

ब्रह्ममुहूर्त में उठकर, एकांत में बैठकर ब्रह्मज्ञानी गुरु के द्वारा निर्दिष्ट युक्तियों से ब्रह्मज्ञान के उपदेश का निरंतर मनन करते रहना चाहिए। मनन के सतत अभ्यास से साधक आत्म-साक्षात्कार के तीसरे सोपान निदिध्यासन में पहुँच जाता है।

इन तीनों सोपानों के पथप्रदर्शक भगवत्प्राप्त ज्ञानी की शरण ले लें तो मार्ग एकदम सरल हो जाता है। 'श्रीगुरुगीता' में भगवान शंकर सात प्रकार के गुरुओं का वर्णन करते हैं। ब्रह्मज्ञानी गुरु को परम गुरु बताते हुए वे कहते हैं :

जलानां सागरो राजा यथा भवति पार्वति।
गुरूणां तत्र सर्वेषां राजायं परमो गुरुः॥

'हे पार्वती ! जिस प्रकार सब जलाशयों में सागर राजा है उसी प्रकार सब गुरुओं में ये परम गुरु राजा हैं।'

ऐसे ब्रह्मज्ञानी परम गुरु की शरणागति प्रज्ञा के दोष को दूर करती है, आनंदस्वरूप परमात्मा की सच्ची पहचान कराती है, अपने घर में ही घर बता देती है, सब संदेह निवृत्त कर देती है, सब संशयों को नष्ट कर देती है।

तुम तसल्ली न दो सिर्फ बैठे ही रहो...
मेहफिल का रंग बदल जायेगा...
गिरता हुआ साधक भी सँभल जायेगा।

आत्म-साक्षात्कार की गुरुचाबी (Master key) केवल ब्रह्मज्ञानी गुरु के पास ही होती है। इसीलिए उनकी महिमा बताते हुए कहा जाता है :

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥

जगत का श्रवण एवं विकारों का मनन जीव को चौरासी लाख जन्मों में ले जानेवाले कर्मों को जन्म देगा। आत्म-साक्षात्कार के बजाय चिन्ताओं, मुसीबतों, दुःखों, मानसिक यातनाओं का साक्षात्कार होगा। अतः सावधान ! आत्मचिन्तन की ही आदत डालो।

आत्म-साक्षात्कार इतना दुर्गम भी नहीं है, अन्यथा किसीको होता ही नहीं। फिर भी वह इतना सरल भी नहीं है, अन्यथा सब लोग आत्म-साक्षात्कारी हो जाते। हाँ, आत्म-साक्षात्कार अटपटा जरूर है। इसमें तीन कृपाओं की आवश्यकता रहती है :

ईश्वरकृपा, शास्त्रकृपा और गुरुकृपा।

ईश्वरकृपा से हमें मनुष्य देह मिली है। जिज्ञासा प्रबल बनने से शास्त्र का अवलंबन लेने की इच्छा होती है। यह इच्छा आगे चलकर मुमुक्षुत्व को जगाती है। जब मोक्ष की आकांक्षा तीव्र बनती है तब परमात्मा स्वयं गुरु के स्वरूप में आ मिलते हैं।

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः॥

'मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व (मुक्ति की आकांक्षा) तथा महापुरुषों का संग- ये तीनों ही भगवत्कृपा के ही हेतु हैं, जो इनके बिना दुर्लभ ही हैं।'

(विवेकचूडामणि : ३)

सचमुच, हम सब तीनगुने भाग्यशाली हैं कि हमें मनुष्य देह मिली है। ईश्वरकृपा ने हमें सत्संग की उपलब्धि कराकर हममें मुमुक्षुत्व भी जगाया है। मोक्ष प्राप्त कराने में समर्थ ब्रह्मज्ञानी महापुरुष का संग भी प्राप्त हुआ है। अतः करो हिम्मत ! मारो छलांग !

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

दुर्बलता छोड़ो। हीन विचारों को तिलांजलि दो। उठो... जागो...

परमदेव परमात्मा कहीं आकाश में, किसी जंगल, गुफा या मंदिर-मस्जिद-चर्च में नहीं बैठा

है। वह चैतन्यदेव आपके हृदय में ही स्थित है। वह कहीं खो नहीं गया है कि उसे खोजने जाना पड़े। केवल उसको जान लेना है।

एक बार आत्म-साक्षात्कार हो जाय तो अनंत-अनंत जन्मों की यात्राओं का अंत आ जाय।

ब्रह्मचिंतन पर, आत्मविचार पर ही अपने हस्ताक्षर करो। बाकी के सब तुच्छ विचारों को फेंक दो कूड़ेदान में। जो नित्य है, सत्य है, शाश्वत् है, जो आपका साथ कभी नहीं छोड़ता उस तत्त्व को जान लो। आत्मविचार ही शक्ति है।

श्रद्धा जगाओ ऐसे आत्मविचार में।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥

'जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञान को प्राप्त होता है तथा ज्ञान को प्राप्त होकर वह बिना विलम्ब के, तत्काल ही भगवद्-प्राप्तिरूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।'

(गीता : ४.३९)

ज्ञान की प्राप्ति ही जीवन का एकमात्र सही उद्देश्य है।

पत्नी कभी यह माला नहीं घुमाती रहती कि 'यह मेरा पति है...' वह तो पति के स्वरूप में उसे एकबार स्वीकृति दे देती है। फिर उसे कभी पति का विस्मरण नहीं होता।

आप भी अपने आत्मदेव को स्वीकृति दे दो कि 'मैं ही आत्मा-परमात्मा हूँ... अखिलब्रह्मांडनायक हूँ। सूर्य-चंद्र-तारों में प्रकाश मैं हूँ। प्रकृति मेरी आज्ञा के आधीन है। ॐ... ॐ... ॐ...'

ऐसे ओजपूर्ण, पवित्र, तेजस्वी, शक्तिशाली, निर्भयतापूर्ण विचारों को ही स्वीकृति दो। दुर्बलता एवं पलायनवाद को झाड़ फेंको।

एक बार उस प्रियतम परमात्मा की झाँकी पा लो। फिर आपको सबमें उसीके दर्शन होंगे। ज्ञानी से बड़ा कोई प्रेमी नहीं है। ज्ञानी से बड़ा कोई रसीला नहीं है। सबमें अपना आत्मस्वरूप देखनेवाला सबको प्रेम किये बिना रह नहीं सकता।

एक बार अनेक में एक की सत्ता का बोध हो जाय तो जीवन कृतकृत्य हो जाय।

कबीरजी कहते हैं :

मनकी मनसा मिट गई अहं गया सब छूट।
गगनमंडल में घर किया, काल रहा सिर कूट ॥

जिस गगनमंडल की ओर ज्ञानी का इशारा है उस चिदाकाशरूप गगनमंडल में अपना घर बना लो। मानव में से महेश्वर बन जाओ।

ॐ... ॐ... ॐ...

****

पू. बापू का आत्म-साक्षात्कार दिवस

सर्वव्यापी पूर्ण ब्रह्म हो, तुम्हें हो किसका साक्षात्कार।
गुरु ये करुणा तुम्हरी है, भक्त हेतु होते साकार॥

धन्य धन्य वो मात-पिता, आप खेले जिनकी गोद में।
सब जग जिनको ढूँढ़ रहा, चल पड़े उन गुरु की खोज में।
श्रीलीलाशाह गुरु को पाकर, हो गए जग के तारणहार।
सर्वव्यापी पूर्ण ब्रह्म हो, तुम्हें हो किसका साक्षात्कार॥

तुम्हीं हो साधक तुम्हीं हो साधन, ब्रह्म तुम, और संत।
तीन गुणों की माया तुम्हरी, जिसका आदि न अंत।
हर शै में है सत्ता तुम्हारी, हर दिल में तेरा अधिकार।
सर्वव्यापी पूर्ण ब्रह्म हो, तुम्हें हो किसका साक्षात्कार॥

तेरा प्रेम-प्रसाद जो पायें, जीते-जी मुक्ति पाते हैं।
तेरी निगाहों में आते ही, हँस के भव को तर जाते हैं।
तुम्हीं सागर तुम्हीं पानी, तुम मांझी-किश्ती-मझधार।
सर्वव्यापी पूर्ण ब्रह्म हो, तुम्हें हो किसका साक्षात्कार॥

दामन तेरा छूट न जाये, हाथ पकड़ के चलना मेरा।
दुस्तर हैं कलियुग की राहें, बस में नहीं संभलना मेरा।
जन्मों से आधीन तेरे हूँ, जो मर्जी हो करो सरकार।
सर्वव्यापी पूर्ण ब्रह्म हो, तुम्हें हो किसका साक्षात्कार॥

जैसे अर्जुन के बने सारथि, मेरा जीवन-रथ हाँको नाथ।
सुख में दुःख में रहूँ सदा सम, तेरी याद सदा मन साथ।
हे निराकार के साकार रूप, हम सब करें तेरी जयकार।
सर्वव्यापी पूर्ण ब्रह्म हो, तुम्हें हो किसका साक्षात्कार॥

- अरुणेशसिंह सागर
बेहटा, जि. कानपुर।

****

जीवन की वास्तविक संपदा

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

श्रीमद् आद्य शंकराचार्यजी कहते हैं :

किं भूषणाद् भूषणमस्ति शीलम्
तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम् ।
किमत्र हेयं कनकं च कान्ता
श्राव्यं सदा किं गुरुवेदवाक्यम् ॥

'उत्तम से उत्तम भूषण क्या है ? शील । परम तीर्थ क्या है ? अपना निर्मल मन ही परम तीर्थ है। इस जगत में त्यागने योग्य क्या है ? कनक और कान्ता । हमेशा सुनने योग्य क्या है ? सद्गुरु और वेद के वचन ।'

श्री शंकराचार्यविरचित 'मणिरत्नमाला' का यह आठवाँ श्लोक है।

भूषणों का भूषण क्या है ? शील । कई लोग सोने-चाँदी के गहने पहनते हैं जैसे कि गले में सुवर्ण की जंजीर, पैर में झांझर, नाक में नथ इत्यादि । वे समझते हैं कि आभूषण पहनने से हम सुशोभित होते हैं लेकिन शास्त्रकारों ने कहा है और बुद्धिमानों का अनुभव है कि गहने पहनने से हम सुशोभित नहीं होते । उससे तो हमारा हाड़-माँस-चामवाला देह थोड़ा-सा सुशोभित हो सकता है लेकिन हमारी वास्तविक शोभा आभूषणों से नहीं है। आभूषणों से तो हमारी वास्तविक शोभा दब जाती है। हमारी शोभा आभूषणों से नहीं है, हमारी शोभा है शील से। मन, वचन और कर्म से अयोग्य कर्म न करना, किसीका बुरा न करना और न ही सोचना, देश-काल के अनुसार योग्यता एवं सरलता से विचारपूर्वक बर्तना- इस आचरण को शास्त्र में शीलव्रत कहा गया है।

गीता में बताये हुए दैवी संपदा के लक्षण शील-प्रधान व्यक्ति में ही होते हैं । यदि आत्मज्ञान न भी हो और शील हो तो मनुष्य जनलोक, तपलोक, स्वर्गलोक आदि उच्च गति को सहज में प्राप्त हो जाता है। शीलवान् ही आत्मबोध प्राप्त करके मुक्त हो सकता है। कड़ा, कुण्डल आदि गहने शीलरहित पुरुष को ऊपर की शोभा भले ही देते हों परंतु सज्जन पुरुषों का तो शील ही भूषण है।

शीलरहित मूर्ख को कड़ा, कुण्डल आदि भूषण बोझरूप हैं। ये भूषण जीव को जोखिम में डालनेवाले और भय का कारण हैं जबकि शीलरूपी भूषण लोक और परलोक में उत्तम सुख देनेवाला है। शील परलोक में अक्षय सुख को प्राप्त करवाता है। मूर्ख पहने हुए भूषणों को भी लजा देता है और शीलवान् पहने हुए भूषणों को शोभा देता है।

स्वामी रामतीर्थ अमेरिका गये थे। सत्संग सुनकर एक महिला उनके पास आयी। यद्यपि उसके अंग पर लाखों रूपयों के हीरेजड़ित अलंकार लदे थे, फिर भी वह बहुत दुःखी थी। प्रवचन पूरा होते ही वह स्वामी रामतीर्थ के चरणों में गिरकर बोली :

''मुझे शांति दो। मैं बहुत दुःखी हूँ। कृपा करो ।''

स्वामी रामतीर्थ ने पूछा : ''इतने मूल्यवान, सुंदर, वस्त्र-आभूषण ! तू इतनी धनवान् ! फिर तू दुःखी कैसे ?''

वह महिला बोली : ''स्वामीजी ! ये गहने तो जैसे गधी पर बोझा लदा हो, वैसे ही मुझ पर लदे हैं। मुझे भीतर से शांति नहीं है।''

अगर शीलरूपी भूषण हमारे पास नहीं है, तो बाहर के वस्त्रालंकार (कोट-पैन्ट-टाई आदि सब) फाँसी जैसे काम करते हैं। चित्त में आत्मप्रसाद है, भीतर प्रसन्नता है, तो वह है शील से, सद्गुणों से। परहित के लिए किया हुआ थोड़ा-सा संकल्प, परहित के लिए किया हुआ थोड़ा-सा काम हृदय में शांति, आनंद और साहस ले आता है। प्राणिमात्र में

परमात्मा को निहारने का अभ्यास करके अन्तःकरण का निर्माण करना- यह शील है। यह महाधन है। स्वर्ग की संपत्ति मिल जाए, स्वर्ग में रहने को मिल जाए किन्तु वहाँ ईर्ष्या है, पुण्य का क्षय है, भय है। जिसके जीवन में शील होता है, उसको ईर्ष्या और पुण्यक्षय का भय नहीं होता। शील आभूषणों का भी आभूषण है।

फिर शंकराचार्यजी आगे कहते हैं कि उत्तम-से-उत्तम तीर्थ क्या है ? अपना विशुद्ध मन ही उत्तम तीर्थ है।

गंगा, यमुना, पुष्कर आदि सभी बाहरी तीर्थ हैं। विशुद्ध हुआ मन जब परमात्मदेव में डूबता है तो वह उत्तम-से-उत्तम तीर्थ में स्नान करता है। तात्पर्य यह है कि उत्तम-से-उत्तम तीर्थ अपना विशुद्ध मन है। मन एक तुम्बा है। शील, सदाचार, हरिनामरूपी मिट्टी, कायिक-वाचिक-मानसिक सत्कर्मरूपी कंकड़ और प्रभु-प्रेमरूपी पानी उसमें डालकर उसे अच्छी तरह धो डालो। फिर साक्षीभाव की दृष्टि से उसे सुखाओ। यह मनरूपी तुम्बा जब ठीक तरह से धुलकर सूख जाता है तब सभी वस्तुएँ उसमें अमृत जैसी रहती हैं।

सभी तीर्थों में उत्तम तीर्थ है अपना अन्तर्मुख मन, आत्माकार वृत्तिवाला मन। अपने मन के पवित्र होने पर तीर्थ में जाएँगे तो महापुण्य होगा। मन पवित्र न हो तो तीर्थ में जाने का पूरा लाभ नहीं होगा। हमारा मन जितना पवित्र और निर्दोष होता है, उतना ही हमें तीर्थ का लाभ भी होता है।

तीसरी बात है कि जंगत में त्यागने योग्य क्या है ? कनक और कान्ता। कनक माने सुवर्ण यानी धन और कान्ता यानी स्त्री। त्यागी, विरक्त संन्यासी के लिए ये दोनों मूल से और भाव से त्यागने योग्य हैं। गृहस्थ इन दोनों को मूल से नहीं वरन् इनकी आसक्ति त्यागे। 'कनक और कान्ता के बिना मैं नहीं जी सकता' ऐसी जो धारणा घुस गई है, उसका भी भीतर से त्याग करें। वास्तव में, हम सभी चीजों के बिना जी सकते हैं, परन्तु अपने चैतन्यस्वरूप आत्मदेव के बिना नहीं जी सकते।

श्री योगवाशिष्ठ महारामायण में आता है :

''इस जीव की जितनी-जितनी इच्छाएँ बढ़ती जाती हैं, उतना-उतना वह तुच्छ होता जाता है। जितनी-जितनी इच्छाओं और तृष्णाओं का वह त्याग करता जाता है, उतना-उतना वह महान् होता जाता है।''

चौथी बात है कि हमेशा सुनने योग्य क्या है ? सद्गुरु और वेद के वचन।

सागर विशाल जलराशि से भरा है लेकिन उस जल से न चाय बना सकते हैं और न ही खिचड़ी पका सकते हैं। वही सागर का पानी सूर्यप्रकाश की गर्मी से ऊपर उठकर बादल बन जाता है और यदि स्वाति नक्षत्र की बूँद बनकर बरसता है तो सीप में गिरकर मोती बन जाता है। ऐसे ही वेदवचनों की अपेक्षा ब्रह्मज्ञानी सद्गुरुओं के वचन ज्यादा हितकारी हैं। वेद सागर हैं तो ब्रह्मज्ञानी गुरु के वचन बादल। सद्गुरु वेदों में से, शास्त्रों में से वाक्य लेकर अपने अनुभव की मिठास मिलाकर साधक के हृदय को परमात्मरस से परितृप्त करते हैं। वे ही वचन साधक के हृदय में पचकर मोती बन जाते हैं।

वेद पढ़ने से किसीको साक्षात्कार हो जाये, यह गारंटी नहीं है। किन्तु सद्गुरु के वचनों से आत्म-साक्षात्कार कइयों के जीवन में हुआ है।

अतः श्री शंकराचार्यजी कहते हैं : सच्चा भूषण शील और नित्य सत्संग है। वेदवचन, शास्त्रवचन की अपेक्षा जीवन्मुक्त ब्रह्मवेत्ता के वचन साधक के लिए अधिक हितावह हैं। अपौरुषेय सनातन तत्त्व में बैठकर ब्रह्मवेत्ता जब बोलते हैं, तब उनकी वाणी हमारी जीवनशक्ति का विकास करके जीवनदाता से मुलाकात करा देती है। उनके हृदय की गहराई से आनेवाले उनके अनुभवनिष्ठ वचन हमारे कानों के द्वारा हृदय की गहराई में पहुँच जाते हैं... चित्त में विश्रान्ति मिलती है... जीवन में आनंद, उल्लास और मधुरता छा जाती है और इसकी आभा तब तो और भी ज्यादा निखर जाती है जब हम कनक और कान्ता की आसक्ति से परे हों।

*

दस नामापराध

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

प्रभुनाम की महिमा अपरंपार है, अगाध है, अमाप है, असीम है। तुलसीदासजी महाराज तो यहाँ तक कहते हैं कि कलियुग में न योग है, न यज्ञ और न ही ज्ञान, वरन् एकमात्र आधार केवल प्रभुनाम का गुणगान ही है। तुलसीदासजी कहते हैं :

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना।
एक अधार राम गुन गाना॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकु।
राम नाम अवलंबनु एकु॥

यदि आप भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला चाहते हैं तो मुखरूपी द्वार की जीभरूपी देहली पर रामनामरूपी मणि-दीपक को रखो।

राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ, जौं चाहसि उजिआर॥

जो भी व्यक्ति रामनाम का, प्रभुनाम का पूरा लाभ लेना चाहे, उसे दस दोषों से अवश्य बचना चाहिए। ये दस दोष 'नामापराध' कहलाते हैं। 'विचारसागर' में आता है :

सन्निन्दाऽसतिनामवैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधिः
अश्रद्धा श्रुतिशास्त्रदैशिकागरां नाम्न्यर्थवादभ्रमः।
नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागो हि धर्मान्तरैः
साम्यं नाम्नि जपे शिवस्य च हरेर्नामापराधा दश॥

(१) सत्पुरुष की निंदा (२) असाधु पुरुष के आगे नाम की महिमा का कथन (३) विष्णु का शिव के साथ भेद (४) शिव का विष्णु के साथ भेद (५) श्रुतिवाक्य में अश्रद्धा (६) शास्त्रवाक्य में अश्रद्धा (७) गुरुवाक्य में अश्रद्धा (८) नाम के विषय में अर्थवाद (महिमा की स्तुति) का भ्रम (९) 'अनेक पापों को नष्ट करनेवाला नाम मेरे पास है' - ऐसे विश्वास से निषिद्ध कर्मों का आचरण और इसी विश्वास से विहित कर्मों का त्याग एवं (१०) अन्य धर्मों (अर्थात् अन्य नामों) के साथ भगवान के नाम की तुल्यता जानना - ये दस शिव एवं विष्णु के जप में नामापराध हैं।

(१) पहला अपराध है सत्पुरुष की निंदा : यह प्रथम नामापराध है। सत्पुरुषों में तो राम-तत्त्व अपने पूर्णत्व में प्रगट हो चुका होता है। यदि सत्पुरुषों की निंदा की जाये तो फिर नामजप से क्या लाभ प्राप्त किया जा सकता है? तुलसीदासजी, नानकजी, कबीरजी जैसे संत पुरुषों ने तो संत-निंदा को बड़ा भारी पाप बताया है। 'श्रीरामचरितमानस' में संत तुलसीदासजी कहते हैं :

हरि हर निंदा सुनइ जो काना।
होइ पाप गोघात समाना॥

'जो अपने कानों से भगवान विष्णु और शिव की निंदा सुनता है, उसे गोवध के समान पाप लगता है।'

हर गुर निंदक दादुर होई।
जन्म सहस्र पाव तन सोई॥

'शंकरजी और गुरु की निंदा करनेवाला मनुष्य (अगले जन्म में) मेढक होता है और वह हजार जन्मों तक मेढक का शरीर पाता है।'

होहिं उलूक संत निंदा रत।
मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत॥

'संतों की निंदा में लगे हुए लोग उल्लू होते हैं, जिन्हें मोहरूपी रात्रि प्रिय होती है और ज्ञानरूपी सूर्य जिनके लिए बीत गया (अस्त हो गया) होता है।'

संत कबीरजी कहते हैं :

कबीरा वे नर अंध हैं,
जो हरि को कहते और, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रुठे नहीं ठौर॥

'सुखमनि' में श्री नानकजी के वचन हैं :

संत का निंदकु महा अतताई।
संत का निंदकु खिनु टिकनु न पाई॥

संत का निंदकु महा हतिआरा।
संत का निंदकु परमेसुरि मारा ॥

'संत की निंदा करनेवाला बड़ा पापी है। संत का निंदक एक क्षण भी नहीं टिकता। संत का निंदक बड़ा घातक होता है। संत के निंदक को ईश्वर की मार होती है।'

संत का दोखी सदा सहकाईऐ।
संत का दोखी न मरै न जीवाईऐ ॥
संत के दोखी की पुजै न आसा।
संत का दोखी उठि चलै निरासा ॥

'संत का दुश्मन सदा कष्ट सहता रहता है। संत का दुश्मन न जीता है, न मरता है। संत के दुश्मन की आशा पूर्ण नहीं होती। संत का दुश्मन निराश होकर मरता है।

(२) दूसरा अपराध है असाधु पुरुष के आगे नाम की महिमा का कथन : जिनका हृदय साधन-संपन्न नहीं है, जिनका हृदय पवित्र नहीं है, जो न तो स्वयं साधन-भजन करते हैं और न ही दूसरों को करने देते हैं, ऐसे अयोग्य लोगों के आगे नाम-महिमा का कथन करना अपराध है।

(३-४) तीसरा और चौथा अपराध है विष्णु का शिव के साथ भेद एवं शिव का विष्णु के साथ भेद मानना : 'मेरा इष्ट बड़ा, तेरा इष्ट छोटा...' 'शिव बड़े हैं, विष्णु छोटे हैं...' अथवा तो 'विष्णु बड़े हैं, शिव छोटे हैं...' ऐसा मानना अपराध है।

(५-६-७) पाचवाँ, छठा और सातवाँ अपराध है श्रुति, शास्त्र एवं गुरु के वचन में अश्रद्धा : नाम का जप तो करना किन्तु श्रुति-पुराण-शास्त्र के विपरीत 'राम' शब्द को समझना एवं गुरु के वाक्य में अश्रद्धा करना अपराध है। **रमन्ते योगीनः यस्मिन् स रामः**। जिसमें योगी लोग रमण करते हैं वह है राम। श्रुति एवं शास्त्र जिस 'राम' की महिमा का वर्णन करते-करते नहीं अघाते, उस 'राम' को न जानकर अपने मनःकल्पित ख्याल के अनुसार 'राम-राम' करना- यह एक बड़ा दोष है। ऐसे दोष से ग्रसित व्यक्ति रामनाम का पूरा लाभ नहीं ले पाता।

(८) आठवाँ अपराध है नाम के विषय में अर्थवाद (महिमा की स्तुति) का भ्रम : अपने ढंग से भगवान के नाम का अर्थ करना एवं शब्द को पकड़ रखना भी एक अपराध है।

चार बच्चे आपस में झगड़ रहे थे। इतने में वहाँ से एक सज्जन गुजरे। उन्होंने पूछा : ''क्यों लड़ रहे हो ?''

तब एक बालक ने कहा : ''हमको एक रूपया मिला है। एक कहता है 'तरबूज' खाना है, दूसरा कहता है 'वाटरमिलन' खाना है, तीसरा बोलता है 'कलिंगर' खाना है एवं चौथा कहता है 'छाँईं' खाना है।''

यह सुनकर उन सज्जन को हुआ कि, है तो एक ही चीज लेकिन अलग-अलग अर्थवाद के कारण चारों आपस में लड़ रहे हैं। अतः उन्होंने एक तरबूज लेकर उसके चार टुकड़े किये एवं चारों को देते हुए कहा :

''यह रहा तुम्हारा तरबूज, वाटरमिलन, कलिंगर एवं छाँईं।''

चारों बालक खुश हो गये।

इसी प्रकार जो लोग केवल शब्द को ही पकड़ रखते हैं, उसके लक्ष्य को नहीं समझते, वे लोग 'नाम' का पूरा फायदा नहीं ले पाते।

(९) नौवाँ अपराध है 'अनेक पापों को नष्ट करनेवाला नाम मेरे पास है'- ऐसे विश्वास के कारण निषिद्ध कर्मों का आचरण एवं विहित कर्मों का त्याग : ऐसा करनेवाले को भी नामजप का फल नहीं मिलता है।

(१०) दसवाँ अपराध है अन्य धर्मों (अर्थात् अन्य नामों) के साथ भगवान के नाम की तुल्यता जानना : कई लोग अन्य धर्मों के साथ, अन्य नामों के साथ भगवान के नाम की तुल्यता समझते हैं, अन्य गुरु के साथ अपने गुरु की तुल्यता समझते हैं जो कि उचित नहीं है। यह भी एक अपराध है।

जो लोग इन दस नामापराधों में से किसी भी अपराध से ग्रस्त हैं, वे नामजप का पूरा लाभ नहीं उठा सकते। किन्तु जो इन अपराधों से बचकर श्रद्धा-भक्ति एवं विश्वासपूर्वक नामजप करते हैं, वे अखंड फल के भागीदार होते हैं।

*

श्राद्ध

[श्राद्धपक्ष : ६ से २० सितम्बर '९८ पर विशेष]

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

जो श्रद्धा से दिया जाये, उसे श्राद्ध कहते हैं। श्रद्धा और मंत्र के मेल से जो विधि होती है उसे श्राद्ध कहते हैं। जीवात्मा का अगला जीवन पिछले संस्कारों से बनता है। अतः श्राद्ध करके यह भावना की जाती है कि उसका अगला जीवन अच्छा हो। जिनके प्रति हम कृतज्ञतापूर्वक श्रद्धा व्यक्त करते हैं वे भी हमारी सहायता करते हैं।

वराह पुराण में श्राद्ध की विधि का वर्णन करते हुए मार्कण्डेयजी गौरमुख ब्राह्मण से कहते हैं :

विप्रवर ! छहों वेदांगों को जाननेवाले, यज्ञानुष्ठान में तत्पर, भानजे, दौहित्र, श्वसुर, जामाता, मामा, तपस्वी ब्राह्मण, पंचाग्नि तपनेवाले, शिष्य, संबंधी तथा अपने माता-पिता के प्रेमी ब्राह्मणों को श्राद्धकर्म में नियुक्त करना चाहिए।

मित्रघाती, स्वभाव से ही विकृत नखवाला, काले दाँतवाला, कन्यागामी, आग लगानेवाला, सोमरस बेचनेवाला, जनसमाज में निंदित, चोर, चुगलखोर, ग्राम-पुरोहित, वेतन लेकर पढ़ानेवाला, पुनर्विवाहिता स्त्री का पति, माता-पिता का परित्याग करनेवाला, हीन वर्ण की संतान का पालन-पोषण करनेवाला, शूद्रा स्त्री का पति तथा मंदिर में पूजा करके जीविका चलानेवाला- ऐसा ब्राह्मण श्राद्ध के अवसर पर निमंत्रण देने योग्य नहीं है।

※ ब्राह्मण को निमंत्रित करने की विधि ※

विचारशील पुरुष को चाहिए कि संयमी, श्रेष्ठ ब्राह्मणों को एक दिन पूर्व ही निमंत्रण दे दे। परन्तु श्राद्ध के दिन कोई अनिमंत्रित तपस्वी ब्राह्मण घर पर पधारें तो उन्हें भी भोजन कराना चाहिए। श्राद्धकर्त्ता को घर पर आये हुए ब्राह्मणों के चरण धोने चाहिए। फिर अपने हाथ धोकर उन्हें आचमन कराना चाहिए। तत्पश्चात् उन्हें आसनों पर बैठाकर भोजन कराना चाहिए।

पितरों के निमित्त अयुग्म अर्थात् एक, तीन, पाँच, सात इत्यादि की संख्या में तथा देवताओं के निमित्त युग्म अर्थात् दो, चार, छः, आठ आदि की संख्या में ब्राह्मणों को भोजन कराने की व्यवस्था करना चाहिए। देवताओं एवं पितरों दोनों के निमित्त एक-एक ब्राह्मण को भोजन कराने का भी विधान है।

※ श्राद्ध के समय हवन करने की विधि ※

पुरुषप्रवर ! श्राद्ध के अवसर पर ब्राह्मण को भोजन कराने के पहले उनसे आज्ञा पाकर शाक और लवणहीन अन्न से अग्नि में तीन बार हवन करना चाहिए। उनमें **'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा।'** इस मंत्र से पहली आहुति, **'सोमाय पितृमते स्वाहा ।'** इससे दूसरी आहुति एवं **'वैवस्वताय स्वाहा ।'** कहकर तीसरी आहुति देने का समुचित विधान है। तत्पश्चात् हवन करने से बचे हुए अन्न को थोड़ा-थोड़ा सभी ब्राह्मणों के पात्रों में दें।

※ श्राद्ध में भोजन कराने का नियम ※

भोजन के लिए उपस्थित अन्न अत्यंत मधुर, भोजनकर्त्ता की इच्छा के अनुसार तथा अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ होना चाहिए। पात्रों में भोजन रखकर श्राद्धकर्त्ता को अत्यंत सुंदर एवं मधुर वाणी से कहना चाहिए कि :

''हे महानुभावों ! अब आप लोग अपनी इच्छा के अनुसार भोजन करें।''

फिर क्रोध तथा उतावलेपन को छोड़कर उन्हें भक्तिपूर्वक भोजन परोसते रहना चाहिए।

ब्राह्मणों को भी दत्तचित्त और मौन होकर प्रसन्नमुख से सुखपूर्वक भोजन करना चाहिए।

※ अभिश्रवण : वैदिक श्राद्धमंत्र का पाठ ※

श्राद्ध में ब्राह्मणों को भोजन कराते समय रक्षक मंत्र का पाठ करके भूमि पर तिल बिखेर दें तथा अपने पितृरूप में उन द्विजश्रेष्ठों का ही चिंतन करें।

रक्षक मंत्र इस प्रकार है :

यज्ञेश्वरो यज्ञसमस्तनेता
भोक्ताऽव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽस्तु ।
तत्संनिधानादपयान्तु सद्यो
रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे ॥

'यहाँ संपूर्ण हव्य-फल के भोक्ता यज्ञेश्वर भगवान श्रीहरि विराजमान हैं। अतः उनकी सन्निधि के कारण समस्त राक्षस और असुरगण यहाँ से तुरंत भाग जायें।' (वराह पुराण : १४.३२)

ब्राह्मणों के भोजन के समय यह भावना करें कि :

'इन ब्राह्मणों के शरीरों में स्थित मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह आदि आज भोजन से तृप्त हो जायें।'

जैसे यहाँ के भेजे हुए रूपये लंदन में पाउन्ड, अमेरिका में डालर एवं जापान में येन बन जाते हैं ऐसे ही पितरों के प्रति किये गये श्राद्ध का अन्न, श्राद्धकर्म का फल हमारे पितर जहाँ हैं, जैसे हैं, उनके अनुरूप उनको मिल जाता है। किन्तु इसमें जिसके लिए श्राद्ध किया जा रहा हो, उनके नाम, उनके पिता के नाम एवं गोत्र के नाम का स्पष्ट उच्चारण होना चाहिए। विष्णु पुराण में आता है :

श्रद्धासमन्वितैर्दत्तं पितृभ्यो नामगोत्रतः ।
यदाहारास्तु ते जातास्तदाहारत्वमेति तत् ॥

'श्रद्धायुक्त व्यक्तियों द्वारा नाम और गोत्र का उच्चारण करके दिया हुआ अन्न पितृगण को वे जैसे आहार के योग्य होते हैं वैसा ही होकर उन्हें मिलता है।' (विष्णु पुराण : ३.१६.१६)

※ अन्न आदि के वितरण का नियम ※

जब निमंत्रित ब्राह्मण भोजन से तृप्त हो जायें तो भूमि पर थोड़ा-सा अन्न डाल देना चाहिए। आचमन के लिए उन्हें एक-एक बार शुद्ध जल देना आवश्यक है। तदनंतर भली-भाँति तृप्त हुए ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर भूमि पर उपस्थित सभी प्रकार के अन्न से पिण्डदान करने का विधान है। श्राद्ध के अंत में बलिवैश्वदेव का भी विधान है।

श्राद्ध के आरंभ में व अंत में निम्नांकित मंत्र का तीन बार जप करें :

देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगीभ्य एव च ।
नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः ॥

पिण्डदान करते समय एकाग्रचित्त होकर इसका जप करना चाहिए। इससे पितर शीघ्र ही आ जाते हैं और राक्षस भाग खड़े होते हैं। तीनों लोकों के पितर तृप्त होते हैं। यह मंत्र पितरों को तारनेवाला है।

श्राद्ध के अंत में दान देते समय हाथ में काले तिल, जौ और कुशा के साथ पानी लेकर ब्राह्मण को दान देना चाहिए ताकि उसका शुभ फल पितरों तक पहुँच सके, नहीं तो असुर लोग हिस्सा ले जाते हैं। ब्राह्मण के हाथ में अक्षत (चावल) देकर यह मंत्र बोला-बुलवाया जाता है :

अक्षतं चास्तु मे पुण्यं शान्ति पुष्टिर्धृतिश्च मे ।
यदिच्छ्रेयस् कर्मलोके तदस्तु सदा मम ॥

'मेरा पुण्य अक्षय हो। मुझे शांति, पुष्टि और धृति प्राप्त हो। लोक में जो कल्याणकारी वस्तुएँ हैं, वे सदा मुझे मिलती रहें।'

इस प्रकार की प्रार्थना भी की जा सकती है।

पितरों को श्रद्धा से ही बुलाया जा सकता है। केवल कर्मकाण्ड या वस्तुओं से काम नहीं होता है।

श्राद्ध की विधि में श्रद्धा और शुद्ध मंत्रोच्चारण के साथ पितरों का नाम, उनके पिता का नाम, उनके कुलगोत्र का नाम लेकर उनका आवाहन किया जाता है।

श्राद्धकाल में ब्राह्मणों को अन्न देने में यदि कोई समर्थ न हो तो, ब्राह्मणों को वन्य कंदमूल-फल, जंगली शाक एवं थोड़ी-सी दक्षिणा ही दे। यदि इतना करने में भी कोई समर्थ न हो तो किसी भी द्विजश्रेष्ठ को प्रणाम करके एक मुट्ठी काले तिल दे अथवा पितरों के निमित्त पृथ्वी पर भक्ति एवं नम्रतापूर्वक सात-आठ तिलों से युक्त जलांजलि दे देवे। यदि इसका भी अभाव हो तो कहीं-न-कहीं से एक दिन का घास लाकर प्रीति और श्रद्धापूर्वक पितरों के उद्देश्य से गौ

को खिलाये एवं इन सभी वस्तुओं का अभाव होने पर वन में जाकर अपना कक्षमूल (बगल) सूर्य को दिखाता हुआ उच्च स्वर से यह कहे :

न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्य-
च्छ्राद्धस्य योग्यं स्वपितृन्नतोऽस्मि ।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ
भुजौ ततौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥

'मेरे पास श्राद्धकर्म के योग्य न धन-संपत्ति है और न कोई अन्य सामग्री। अतः मैं अपने पितरों को प्रणाम करता हूँ। वे मेरी भक्ति से ही तृप्तिलाभ करें । मैंने अपनी दोनों बाँहें आकाश में उठा रखी हैं।' **(वराह पुराण : १३.५८)**

कहने का तात्पर्य यह है कि पितरों के कल्याणार्थ इन श्राद्ध के दिनों में श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। पितरों को जो श्रद्धामय प्रसाद मिलता है उससे वे तृप्त होते हैं और अपने कुटुम्बियों को मदद भी करते हैं।

श्राद्ध के अनेक प्रकार हैं : नित्य श्राद्ध, नैमित्तिक श्राद्ध, काम्य श्राद्ध, एकोदिष्ट श्राद्ध, गोष्ठ श्राद्ध आदि आदि।

नित्य श्राद्ध : यह श्राद्ध जल द्वारा, अन्न द्वारा प्रतिदिन होता है । श्रद्धा-विश्वास से देवपूजन, माता-पिता एवं गुरुजनों के पूजन को नित्य श्राद्ध कहते हैं। अन्न के अभाव में जल से भी श्राद्ध किया जाता है।

काम्य श्राद्ध : जो श्राद्ध कामना रखकर किया जाता है, उसे काम्य श्राद्ध कहते हैं।

वृद्ध श्राद्ध : विवाह, उत्सव आदि अवसर पर वृद्धों के आशीर्वाद लेने हेतु किया जानेवाला श्राद्ध वृद्ध श्राद्ध कहलाता है।

संपिंडित श्राद्ध : संपिंडित श्राद्ध सम्मान हेतु किया जाता है।

पार्व श्राद्ध : मंत्रों से पर्वों पर किया जानेवाला श्राद्ध पार्व श्राद्ध है। जैसे अमावस्या आदि पर्वों पर किया जानेवाला श्राद्ध।

गोष्ठ श्राद्ध : गौशाला में किया जानेवाला श्राद्ध गोष्ठ श्राद्ध कहलाता है।

शुद्धि श्राद्ध : पापनाश करके अपने को शुद्ध कराने के लिए जो श्राद्ध किया जाता है वह है शुद्धि श्राद्ध।

दैविक श्राद्ध : देवताओं की प्रसन्नता के उद्देश्य से दैविक श्राद्ध किया जाता है।

कर्मांग श्राद्ध : आनेवाली संतति के लिए गर्भाधान, सोमयाग, सीमन्तोन्नयन आदि जो किया जाता है, उसे कर्मांग श्राद्ध कहते हैं।

तुष्टि श्राद्ध : देशान्तर में जानेवाले की तुष्टि के लिए जो शुभकामना की जाती है, उसके लिए जो दान-पुण्य आदि किया जाता है उसे तुष्टि श्राद्ध कहते हैं। अपने मित्र, भाई-बहन, पति-पत्नी आदि की भलाई के लिए जो कर्म किये जाते हैं उन सबको तुष्टि श्राद्ध कहते हैं।

क्षयाः यां सान्त्वश्रिक श्राद्ध : बारह महीने होने पर श्राद्ध के दिनों में जो विधि की जाती है, उसे **क्षयाः यां सान्त्वश्रिक श्राद्ध** कहते हैं।

ऊँचे में ऊँचा, सबसे बढ़िया श्राद्ध इन श्राद्धपक्ष की तिथियों में होता है। हमारे पूर्वज जिस तिथि में इस संसार से गये हैं उसी तिथि के दिन इस श्राद्ध पक्ष में किया जानेवाला श्राद्ध सर्वश्रेष्ठ होता है।

हमारे जो संबंधी देव हो गये हैं, जिनको दूसरा शरीर नहीं मिला है वे पितृलोक में अथवा इधर-उधर विचरण करते हैं, उनके लिए पिण्डदान किया जाता है।

बच्चों एवं संन्यासियों के लिए पिण्डदान नहीं किया जाता। पिण्डदान उन्हीं का होता है जिनको 'मैं-मेरे' की आसक्ति है। बच्चों की 'मैं-मेरे' की स्मृति और आसक्ति विकसित नहीं होती और संन्यास ले लेने पर शरीर को 'मैं' मानने की स्मृति संन्यासी को हटा देनी होती है। शरीर में उनकी आसक्ति नहीं होती इसलिए उनके लिए पिण्डदान नहीं किया जाता।

श्राद्ध में बाह्य रूप से जो चावल का पिण्ड बनाया जाता है, केवल उतना बाह्य कर्मकाण्ड ही नहीं है वरन् पिण्डदान के पीछे तात्त्विक ज्ञान भी छुपा है।

जो शरीर में नहीं रहे हैं, पिण्ड में हैं, उनका नौ

तत्त्वों का पिण्ड रहता है : चार अन्तःकरण और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। उनका स्थूल पिण्ड नहीं रहता है वरन् वायुमय पिण्ड रहता है। वे अपनी आकृति दिखा सकते हैं किन्तु आप उन्हें छू नहीं सकते। दूर से ही वे आपकी दी हुई चीज को भावनात्मक रूप से ग्रहण करते हैं। दूर से ही वे आपको प्रेरणा आदि देते हैं अथवा कोई-कोई स्वप्न में भी मार्गदर्शन देते हैं।

अगर पितरों के लिए किया गया पिण्डदान एवं श्राद्धकर्म व्यर्थ होता तो वे मृतक पितर स्वप्न में यह नहीं कहते कि : 'हम दुःखी हैं। हमारे लिए पिण्डदान करो ताकि हमारी पिण्ड की आसक्ति छूटे और हमारी आगे की यात्रा हो, हमें दूसरा शरीर, दूसरा पिण्ड मिल सके।'

श्राद्ध इसीलिए किया जाता है कि पितर मंत्र एवं श्रद्धापूर्वक किये गये श्राद्ध की वस्तुओं को भावनात्मक रूप से लेते हैं और वे तृप्त होकर हमें सहायता भी करते हैं।

जीवात्मा का अगला जीवन पिछले संस्कारों से बनता है। अतः श्राद्ध करके यह भावना की जाती है कि उनका अगला जीवन अच्छा हो। वे भी हमारे वर्त्तमान जीवन की अड़चनों को दूर करने की प्रेरणा देते हैं और हमारी भलाई करते हैं।

Every action creates reaction.

आप जिससे भी बात करते हैं उससे यदि आप प्रेम से, नम्रता से और उसके हित की बात करते हैं तो वह भी आपके साथ प्रेम से और आपके हित की ही बात करेगा। यदि आप सामनेवाले से काम करवाकर फिर उसकी ओर देखते तक नहीं तो वह भी आपकी ओर नहीं देखेगा या आपसे रुष्ट हो जायेगा। किसीके घर में ऐरे-गैरे या लूले-लंगड़े या माँ-बाप को दुःख देनेवाले बेटे पैदा होते हैं तो उसका कारण भी यही बताया जाता है कि जिन्होंने पितरों को तृप्त नहीं किया, पितरों का पूजन नहीं किया, अपने माँ-बाप को तृप्त नहीं किया उनके बच्चे भी उनको तृप्त करनेवाले नहीं होते।

श्री अरविन्द घोष जब जेल में थे तब उन्होंने लिखा था : ''मुझे स्वामी विवेकानंद की आत्मा द्वारा प्रेरणा मिलती है और मैं १५ दिन तक महसूस करता रहा हूँ कि स्वामी विवेकानंद की आत्मा मुझे सूक्ष्म जगत की साधना का मार्गदर्शन देती है।''

जब उन्होंने परलोकगमनवालों की साधना की तब उन्होंने महसूस किया कि रामकृष्ण परमहंस का अंतवाहक शरीर (उनकी आत्मा) भी उन्हें सहयोग देता था।

अब यहाँ एक संदेह हो सकता है कि श्री रामकृष्ण परमहंस को तो परमात्म-तत्त्व का साक्षात्कार हो गया था, वे तो मुक्त हो गये। वे अभी पितर लोक में तो नहीं होंगे। फिर उनके द्वारा प्रेरणा कैसे मिली ?

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में श्री वशिष्ठजी महाराज कहते हैं :

''ज्ञानी जब शरीर में होता है तो जीवन्मुक्त होता है और जब शरीर छूटता है तो विदेहमुक्त होता है। फिर वह ज्ञानी व्यापक ब्रह्म हो जाता है। वह सूर्य होकर तपता है, चंद्रमा होकर चमकता है, ब्रह्माजी होकर सृष्टि उत्पन्न करता है, विष्णु होकर सृष्टि का पालन करता है और शिव होकर संहार करता है।''

जब सूर्य एवं चंद्रमा में ज्ञानी व्याप जाते हैं तो अपने रास्ते जानेवाले को वे प्रेरणा दे दें यह उनके लिए असंभव नहीं है।

मेरे गुरुदेव तो व्यापक ब्रह्म हो गये लेकिन मैं अपने गुरुदेव से जब भी बात करना चाहता हूँ तो हो जाती है और जो प्रेरणा लेना चाहता हूँ तो देर नहीं लगती। अथवा तो ऐसा कह सकते हैं कि अपना शुद्ध संवित् ही गुरुरूप में, पितृरूप में प्रेरणा दे देता है।

कुछ भी हो, श्रद्धा से किये हुए पिण्डदान आदि कर्त्ता को मदद करते हैं। श्राद्ध का एक विशेष फायदा यह है कि 'मरने के बाद भी जीव का अस्तित्व रहता है' इस बात की स्मृति बनी रहती है। दूसरा लाभ यह है कि इसमें अपनी संपत्ति का सामाजिकरण होता है। गरीब-गुरबे, कुटुम्बियों आदि को भोजन मिलता है। दूसरे भोज-समारोहों में रजो-तमोगुण होता है जबकि श्राद्ध हेतु दिया गया भोजन धार्मिक भावना को बढ़ाता है और परलोक संबंधी ज्ञान एवं भक्तिभाव को विकसित करता है।

भगवान श्रीराम ने भी अपने पिता दशरथ का श्राद्ध किया था और ब्रह्मज्ञानी महापुरुष एकनाथजी महाराज भी अपने पिता का श्राद्ध करते थे।

श्रीमद् भगवद्गीता के प्रथम अध्याय के ४२ वें श्लोक में आया है :

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥

'वर्णसंकर कुलघातियों को और कुल को नरक में ले जानेवाला ही होता है। श्राद्ध और तर्पण न मिलने से इन (कुलघातियों) के पितर भी अधोगति को प्राप्त होते हैं।'

वर्णसंकर : एक जाति के पिता एवं दूसरी जाति की माता से उत्पन्न संतान को वर्णसंकर कहते हैं।

महाभारत के अनुशासन पर्व के अन्तर्गत दानधर्म पर्व में आता है :

अर्थाल्लोभाद् वा कामाद् वा वर्णानां चाप्यनिश्चयात्।
अज्ञानाद् वापि वर्णानां जायते वर्णसंकरः॥
तेषामेतेन विधिना जातानां वर्णसंकरे।

'धन पाकर या धन के लोभ में आकर अथवा कामना के वशीभूत होकर जब उच्च वर्ण की स्त्री नीच वर्ण के पुरुष के साथ संबंध स्थापित कर लेती है, तब वर्णसंकर संतान उत्पन्न होती है। वर्ण का निश्चय अथवा ज्ञान न होने से भी वर्णसंकर की उत्पत्ति होती है।' **(महाभारत : दानधर्म पर्व : ४८.१,२)**

वर्णसंकर के हाथ का दिया पिण्डदान और श्राद्ध पितर स्वीकार नहीं करते और वर्णसंकर संतान से पितर तृप्त नहीं होते वरन् दुःखी और अशान्त होते हैं। अतः उसके कुल में भी दुःख, अशान्ति और तनाव बना रहता है।

श्राद्धकाल में शरीर, द्रव्य, स्त्री, भूमि, मन, मंत्र और ब्राह्मण ये सात चीजें विशेष शुद्ध होनी चाहिए। श्राद्ध में तीन बातों को ध्यान में रखना चाहिए : शुद्धि अक्रोध और अत्वरा (जल्दबाजी नहीं)।

श्राद्ध में कृषि और वाणिज्य का धन उत्तम, उपकार के बदले में दिया गया धन मध्यम और ब्याज एवं छल-कपट से कमाया गया धन अधम माना जाता है। उत्तम धन से देवता और पितरों की तृप्ति होती है, वे प्रसन्न होते हैं। मध्यम धन से मध्यम प्रसन्नता होती है और अधम धन से छोटी योनि (चाण्डाल आदि योनि) में जो अपने पितर हैं उनको तृप्ति मिलती है। श्राद्ध में जो अन्न इधर-उधर छोड़ा जाता है उससे पशु योनि एवं इतर योनि में भटकते हुए हमारे कुल के लोगों को तृप्ति मिलती है, ऐसा कहा गया है।

श्राद्ध में मंत्र का बड़ा महत्त्व है। श्राद्ध में आपके द्वारा दी गई वस्तु कितनी भी मूल्यवान क्यों न हो, लेकिन आपके द्वारा यदि मंत्र का उच्चारण ठीक न हो तो काम अस्त-व्यस्त हो जाता है। मंत्रोच्चारण शुद्ध होना चाहिए और जिसके निमित्त श्राद्ध करते हों उसके नाम का उच्चारण शुद्ध करना चाहिए।

मान लो, हमारे पिता चल बसे हैं और हमें तिथि का पता नहीं है तो भूली हुई तिथिवालों का श्राद्ध अमावस्या के दिन करना चाहिए। हमारी अमावस्या पितरों के दोपहर का समय होता है। दोपहर में सभी को भूख लगती है। अपने सत्कर्मों से अपना अंतःकरण पवित्र होता है और अपने संबंधियों की उन्नति होती है।

हिन्दुओं में जब पत्नी संसार से जाती है तो पति को हाथ जोड़कर कहती है : ''मेरे से कुछ अपराध हो गया हो तो क्षमा करना और मेरी सद्गति के लिए आप प्रार्थना करना।'' अगर पति जाता है तो हाथ जोड़ते हुए कहता है : ''जाने-अनजाने तेरे साथ मैंने कभी कठोर व्यवहार किया हो तो तू मुझे क्षमा कर देना और मेरी सद्गति के लिए प्रार्थना करना।''

हम एक-दूसरे की सद्गति के लिए जीते-जी भी सोचते हैं और मरते समय भी सोचते हैं, मरने के बाद भी सोचते हैं।

श्राद्धकर्म करनेवालों में कृतज्ञता के संस्कार सहज में दृढ़ होते हैं जो शरीर की मौत के बाद भी कल्याण का पथ प्रशस्त करते हैं। श्राद्धकर्म से देवता और पितर तृप्त होते हैं और श्राद्ध करनेवाले का अंतःकरण भी तृप्ति का अनुभव करता है। बूढ़े बुजुर्गों ने आपकी उन्नति के लिए बहुत कुछ किया है तो

उनकी सद्गति के लिए आप भी कुछ करेंगे तो आपके हृदय में भी तृप्ति और पूर्णता का अनुभव होगा।

औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को कैद कर दिया था और पीने के लिए नपा-तुला पानी एक फूटी हुई मटकी में भेजता था। तब शाहजहाँ ने अपने बेटे को लिख भेजा :

''धन्य हैं वे हिन्दू जो अपने मृतक माता-पिता को भी खीर और हलुए-पूरी से तृप्त करते हैं और तू अपने जिन्दे बाप को भी एक पानी की मटकी तक नहीं दे सकता ? तुझसे तो वे हिन्दू अच्छे, जो मृतक माता-पिता की भी सेवा कर लेते हैं।''

भारतीय संस्कृति अपने माता-पिता या कटुम्ब-परिवार का ही हित नहीं, अपने समाज या देश का ही हित नहीं वरन् पूरे विश्व का हित चाहती है।

[वराह पुराण पर आधारित]

*

योगसिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री

लीलाशाहजी महाराज : एक दिव्य विभूति

(गतांक का शेष)

दुःखियों के दुःख दूर करने, उन्हें नये सिरे से जिंदगी शुरू करने के लिए प्रोत्साहित करने एवं उन्हें जीवनोपयोगी वस्तुएँ दिलाने में उन्होंने अपनी जरा भी परवाह नहीं की।

महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, राजस्थान के राजाओं एवं काँग्रेस के आगेवानों के साथ उनका खूब अच्छा संबंध था। पहले से ही पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज उन लोगों के पूजनीय एवं आदरणीय बन गये थे अतः वे लोग भी सिंध से आये हुए हिन्दुओं के लिए सहायक बने। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज राजस्थान, गुजरात, उत्तर भारत एवं जहाँ-जहाँ सिंध तथा बलूचिस्तान के हिन्दू-सिक्ख बसे थे वहाँ-वहाँ जाकर उन लोगों के साथ बैठकर सारी जानकारी लेते थे एवं जरूरत के मुताबिक उन लोगों को मकान, कपड़े, पैसे, नौकरी

एवं अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं की व्यवस्था करवा देते थे।

शायद सिंधी अपना धर्म न भूल बैठें एवं अपनी संस्कृति को न छोड़ दें, अतः पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज बारंबार धर्म के अनुसार जीवन जीने का उपदेश देते। आलस्य छोड़कर, पुरुषार्थी बनने का, अपनी अक्ल-होशियारी से स्वावलंबी बनने का एवं उन्नत जीवन बनाने का मार्गदर्शन देते। भीख माँगकर रहने या सरकार के भरोसे रहने की जगह पर, स्वाश्रयी बनकर लोगों को नौकरी-धंधा करने की सलाह देते। किसीको नौकरी, किसीको खेती-बाड़ी तो किसीको धंधा करने का प्रोत्साहन देते। कई जगहों पर बच्चों के लिए स्कूल भी बनवा देते।

लोगों के जीवन को उन्नत बनाने के लिए केवल सत्संग की भाषा ही नहीं, वरन् वीरता, सदाचार, संयम, निर्भयता जैसे सद्‌गुणों को बढ़ाने का भी संकेत करते। इस विषय की धार्मिक पुस्तकें सिंधी लोगों में बाँटते। उस समय उन्होंने स्वामी श्री रामतीर्थ के प्रमुख शिष्य नारायण स्वामी की लिखी हुई पुस्तक 'उन्नति के लिए दुःख की जरूरत' को सिंधी भाषा में छपवाकर, उसे सिंधी लोगों में बाँटकर लोगों के मनोबल एवं आत्मबल को जागृत करते।

इस प्रकार पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के अथक परिश्रम एवं करुणा-कृपा के फलस्वरूप सिंधी लोग पुरुषार्थी बनकर, अपने पैरों पर खड़े रहकर, प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ते हुए, इज्जत एवं स्वाभिमान से रहने लगे। **आज सिंधी लोग भारत एवं विदेशों के कोने-कोने में रहकर मान-प्रतिष्ठा एवं समाज में उच्च स्थान रखते हैं। यह पूरा शानदार गौरव, प्रेम एवं करुणा की साक्षात् प्रतिमास्वरूप पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज को जाता है ऐसा कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है।**

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज को हमेशा यही फिक्र रहती कि अपने देशवासियों को किस प्रकार सुखी एवं उन्नत बनाऊँ? इसके लिए उन्होंने बहुत मेहनत करके मकानों के साथ स्कूलें, रात्रि पाठशालाएँ, पुस्तकालय एवं व्यायामशालाएँ स्थापित करवायीं। जहाँ-जहाँ वे जाते वहाँ-वहाँ कसरत सिखाते। शरीर स्वस्थ रखने के लिए यौगिक क्रियाओं के साथ प्राकृतिक उपचार बताते।

यदि कोई बीमार व्यक्ति उनके पास जाता तो उसे दवा तो नाममात्र की देते, बाकी तो उनके आशीर्वाद से ही सब अच्छे हो जाते। जब राह भूले नवयुवान अपने यौवन का नाश करके उनके पास मदद माँगते तब वे उन्हें सत्संग सुनाते, प्राचीन भक्तों एवं वीर पुरुषों की वार्ताएँ कहते। उन लोगों को कसरत एवं यौगिक क्रियाओं के साथ प्राकृतिक इलाज बताते। सदाचारी बनने के लिए पुस्तकें भी देते। उन्होंने ऐसे हजारों नवयुवानों का जीवन स्नेह की छाया एवं उच्च मार्गदर्शन देकर सुधारा था।

सिंध से अपना घर-बार, जमीन-जागीर खोकर जो लोग भारत में स्थायी हुए थे उनके लिए पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज का उद्देश्य था उन लोगों के धर्म, संस्कृति, संस्कार एवं इज्जत की रक्षा करने का, किन्तु यह देखकर उनके दिल को खूब आघात पहुँचा कि वे लोग अपने धर्म, संस्कार एवं संस्कृति को भूलते जा रहे हैं। बहनों में फैशन, नग्नता एवं भोग-विलास बढ़ता जा रहा है। बहनें सिंध की अपेक्षा भी ज्यादा आभूषण पहनकर धनवान होने का दिखावा करती हैं। उन्होंने देखा कि भौतिक सुखों की वजह से सिंधी लोगों में सामाजिक रोग जैसे शादी-विवाह में अधिक खर्च, बाह्य आडंबर, शराब-कबाब का उपयोग, महफिलें, नाच-गान एवं फैशन आदि बढ़ता जा रहा है।

एक बार पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज अजमेर में शिक्षक परसराम मोती के घर पर ठहरे थे। उस समय उन्होंने देखा कि समाज में ज्यादा दहेज देने के बुरे रिवाज के कारण गरीब कन्याओं के विवाह बड़ी उम्र तक नहीं हो पाते थे जिसकी वजह से कई लड़कियाँ खराब मार्ग पर चली जातीं या फिर धर्म बदलकर दूसरे धर्म के लड़के के साथ विवाह कर लेतीं।

ऐसी परिस्थिति देखकर पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के कोमल एवं दयालु दिल को बहुत दुःख

हुआ। वहीं उन्होंने घोषणा की :

''जब तक शरीर में प्राण होंगे तब तक कुटिल दहेज-प्रथा को जड़मूल से निकालने का प्रयत्न करता रहूँगा। यही मेरे लिए एक अश्वमेध यज्ञ होगा।''

बस, उसी दिन से उन्होंने दहेज के प्रति 'इन्कलाब जिंदाबाद' शुरू कर दिया। उस समय के दौरान् २०-२५ दिन तक पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज अजमेर में ही रहे। वहाँ वे रोज सुबह में सत्संग देते, फिर अलग-अलग मुहल्लों में जाकर दहेज-प्रथा के उन्मूलन के लिए सलाह देते हुए कहते :

''दहेज एक पाप है। अतः लड़कियों के माता-पिता का खून न चूसें।''

उन्होंने लड़कों के माता-पिताओं को पत्र भी लिखे कि 'दहेज मत लेना। जिन शादी-विवाहों में दहेज लिया जाता हो उनमें उपस्थित मत हो।' युवकों को भी दहेज लेकर शादी करने के लिए मना किया। युवती लड़कियों को भी सीख दी कि अपना स्वाभिमान मत बेचो। दहेज माँगनेवाले के साथ शादी मत करो।

इस आंदोलन पर कुछ पत्रकारों ने लिखा :

''जहाँ इतने बड़े आगेवान भी कुछ न कर सके वहाँ आप व्यर्थ मेहनत कर रहे हैं एवं समय बिगाड़ रहे हैं। इससे कुछ भी परिवर्तन होनेवाला नहीं है। यह तो पर्वत के साथ मस्तक को भिड़ाने जैसा है। पर्वत का तो कुछ नहीं होगा किंतु अंत में अपने ही सिर पर लगेगा।'' यह समाचार पढ़कर पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने हँसते-हँसते जवाब दिया :

''भारत में अंग्रेज राज्य करते थे, तब विश्व में उनका साम्राज्य इतना विशाल था कि उसमें सूर्य अस्त नहीं होता था। तब भी लोग ऐसा ही कहते थे कि अंग्रेज पर्वत के समान हैं। उन लोगों के साथ सिर टकराने से अपना ही सिर फूटेगा। किन्तु ऐसे अंग्रेजों को भी अंत में बिस्तर बाँधने पड़े। लीलाशाह ऐसी धमकियों स घबरानेवाला नहीं है। वह कायर नहीं है।''

उन्होंने लोगों से कहा कि आप कभी दीन-हीन मत होना। कठिन-से-कठिन परिस्थितियों के आगे भी झुकना मत।

हमें रोक सके ये जमाने में दम नहीं।
हमसे जमाना है जमाने से हम नहीं॥

उन्होंने इस आंदोलन को भारत के प्रत्येक शहर एवं गाँव में जाकर चलाया। सत्संग में, स्कूलों में, महिला मंडलों में एवं सरपंचों की सभा में दहेज-कुप्रथा के ऊपर बुलंद आवाज से लोगों में जागृति लानी शुरू कर दी।

इस कार्य के लिए उन्हें लोगों के संगठन की जरूरत भी महसूस हुई। मुंबई के सिंधी लोगों ने यह जवाबदारी ले ली। युवान खूबचंद भाग्या ने इस कार्य में सबसे ज्यादा भाग लिया। उन्होंने पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के आशीर्वाद से 'अखिल भारतीय सिंधी समाज सेवा सम्मेलन' की स्थापना की, जिसके द्वारा यह आंदोलन निरंतर जारी रहा। थोड़े समय के बाद भारत के सिंधी सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की सभा हुई। मुंबई के द्वारा यह आंदोलन भारत के कोने-कोने में फैलने लगा। उसका इतना जोरदार असर हुआ कि अनेकों माता-पिता एवं नवयुवक दहेज लिए बिना ही शादी करने लगे।

उसके दूसरे वर्ष १३ मई, १९५७ में दूसरा 'अखिल भारतीय सिंधी समाज सम्मेलन' अजमेर में आयोजित हुआ। इस सम्मेलन के मुख्य अध्यक्ष डॉ. चोईथराम गिदवाणी थे। अचानक आयी हुई गंभीर बीमारी की वजह से वे उपस्थित न रह सके। तब उनकी ओर से उनके सहायक के रूप में प्रोफेसर घनश्यामदास शिवदासानी आये। उन्होंने उस संम्मेलन का उद्‌घाटन किया एवं डॉ. चोईथराम के हाथों लिखा गया भाषण पढ़ा जिसमें दहेज के साथ-साथ दूसरी भी सामाजिक कुप्रथाओं को दूर करने एवं सुधार करने की बातों का उल्लेख था।

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज अलग-अलग शहरों में जाकर पंचायतों द्वारा सामाजिक सुधार के कार्य करवाते रहे। उन्होंने कहा :

''सुधार तो अपने घर से ही शुरू करना चाहिए। घर के बाद पड़ोस, समाज, शहर... फिर दायरा बढ़ाते-बढ़ाते देश एवं फिर पूरी मनुष्य जाति तक

विस्तार करना चाहिए।''

इस बात को लक्ष्य में रखकर उन्होंने पहले अपने ब्रह्मक्षत्रिय समाज की तरफ ध्यान दिया। इस समाज में जो कमियाँ थीं, वे धीरे-धीरे दूर हो गयीं। पंचायतों में एकता आने लगी। इस कारण ब्रह्मक्षत्रिय समाज के लोग पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज को 'अवतारी पुरुष' के रूप में पूजने लगे।

सभी पंचायतों ने एकत्रित होकर एक 'अखिल भारतीय ब्रह्मक्षत्रिय सम्मेलन' की स्थापना की। यह सम्मेलन भारत के विभिन्न शहरों में होने लगा जिसका नेतृत्व पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज स्वयं करते। उनकी ही प्रेरणा से ब्रह्मक्षत्रियों के शिक्षा केन्द्र के प्रचार के लिए एक बड़ा फंड जमा किया गया, जिसमें से योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति, विधवा एवं गरीबों को आर्थिक मदद एवं बेरोजगारों के लिए नौकरी-धंधे की व्यवस्था की गयी।

जिस प्रकार ब्रह्मक्षत्रिय समाज पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज को 'अवतारी पुरुष' मानने लगा उसी प्रकार लाड़ अथवा दक्षिणी सिंध के लोग भी उन्हें अपना मार्गदर्शक, उद्धारक एवं साक्षात् परब्रह्म परमात्मा समझकर उनकी पूजा करने लगा। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने उन लोगों की पंचायत में भी एकता लाकर वहाँ 'अखिल भारतीय लाड़ पंचायत सम्मेलन' की स्थापना की एवं उसके द्वारा समाज-सुधार के कार्य शुरू किये।

किन्तु फिर से सिंधियों के घरों की बिगड़ती हुई खराब परिस्थितियों से वे अनभिज्ञ न रहे। घर में बढ़ती खटपट, सास-बहू, ननद-भौजाई एवं पति-पत्नी के बीच बढ़ते झगड़े उनकी नजरों से ओझल न थे। उन्होंने गृहस्थियों के घरों को नरक बनते देखा, लड़कियों एवं स्त्रियों के चरित्र को बिगड़ते हुए देखा, जिसके मुख्य कारण थे सिनेमा एवं टेलिविजन। युवतियों में नग्नता, वेश्यावृत्ति एवं फैशन बढ़ने लगी, बुराइयों की बदबू बढ़ने लगी, लोग धर्म-कर्म से भ्रष्ट होने लगे। पूजा-मंदिर के बदले सिनेमाघर आ गये। (क्रमशः)

*

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

सर्वत्र ईशदृष्टि ही अमृतपान

महाभारत के युद्ध के पश्चात् युधिष्ठिर का राज्याभिषेक करके भगवान श्रीकृष्ण सुभद्रा के साथ द्वारिका लौट रहे थे। मार्ग में मारवाड़ देश में उत्तंग ऋषि तपस्या में बैठे हुए थे। श्रीकृष्ण ने ब्रह्मचर्य, जप एवं तप के तेज से सुशोभित उन ऋषि का आदर-सत्कार किया एवं ऋषि ने भी श्रीकृष्ण का आदर-सत्कार करके पूजन किया।

परस्पर आदर-सत्कार के पश्चात् दोनों में आपस में चर्चा होने लगी। तब श्रीकृष्ण ने महाभारत के युद्ध एवं युधिष्ठिर के राज्याभिषेकादि की घटना से ऋषिवर को अवगत कराया। जब उत्तंग ऋषि ने कौरवों के विनाश की बात सुनी तब वे कुपित हो गये एवं बोले :

''कुरुवंश में इतने-इतने महारथी थे, वीर थे उन सबका विनाश तुमने करवा दिया ? तुम चाहते तो उनकी रक्षा कर सकते थे। तुममें सामर्थ्य था उनको बचाने का। मैं तुम्हें श्राप...''

ज्यों-ही उत्तंग ऋषि कुपित होकर श्राप देने को तैयार हुए त्यों-ही श्रीकृष्ण बोले :

''हे ऋषिवर ! श्राप देने से पूर्व मेरी बात सुन लीजिए। आप भृगु ऋषि के कुल में उत्पन्न हुए हैं एवं जप-तप, ध्यान-धारणा तथा ब्रह्मचर्य से सुशोभित हैं। आपके पास सामर्थ्य भी है किन्तु सब सामर्थ्य का, सब शक्तियों का मूल कारण मैं ही हूँ। मैं आपके

श्राप से प्रभावित नहीं होऊँगा। जैसे, कारण कभी कार्य से प्रभावित नहीं होता, लहरों के उछलने-कूदने से सागर कभी प्रभावित नहीं होता, ऐसे ही सब भूतों का आदि कारण मैं हूँ। अतः मुझ पर आपके श्राप का कोई असर नहीं होगा।

मैं जिस-जिस काल में, जिस-जिस रंग में, जिस-जिस रूप में अवतरित होता हूँ, उसकी मर्यादा की रक्षा भी करता हूँ। मानव-तन धारण करके आया हूँ। अतः पहले मैंने दूत होकर पाण्डवों के साथ संधि करने के लिए कौरवों से प्रार्थना भी की। 'केवल पाँच गाँव पाण्डवों को मिल जायें, तब भी समझौता हो सकता है' यहाँ तक मैं बात को ले आया था किन्तु कौरवों ने मेरी एक न सुनी और कहा : 'सूई की नोंक पर धूलि का कण टिक सके, इतनी भूमि भी हम देने को तैयार नहीं हैं।' इसलिए न चाहते हुए भी युद्ध अनिवार्य हो गया।

फिर मैंने युद्ध में भी कौरवों को वीरगति प्राप्त करवायी एवं पाण्डवों को राज्य दिलवाया। मैंने स्वयं तो कुछ नहीं लिया क्योंकि सबके रूप में मैं ही तो हूँ। पाण्डव होकर भी मैं ही भोग रहा हूँ एवं कौरव होकर भी मैं ही भोग रहा हूँ, राजा होकर मैं ही राज्य कर रहा हूँ एवं ऋषि होकर भी मैं ही तप कर रहा हूँ। मुझ कारण को किसी कार्यरूप पदार्थों की आवश्यकता नहीं है। मैं ही सबका आदि कारण हूँ।''

तब ऋषि उत्तंग का क्रोध शांत हुआ एवं उन्होंने भक्तिभावपूर्वक श्रीकृष्ण की पूजा की। भगवान श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर कहा :

''हे ऋषि ! कुछ माँग लो।''

ऋषि : ''जब सब आप ही हो तो अपने विश्वरूप का दर्शन कराने की कृपा करो।''

भगवान ने ऋषि को अपने विश्वरूप का दर्शन कराया एवं पुनः अपने श्रीकृष्णरूप में आ गये। फिर वे बोले :

''हे उत्तंग ऋषि ! और भी कुछ माँग लो।''

ऋषि : ''भगवन् ! यहाँ मारवाड़ में जल नहीं है। कृपा कीजिए कि यहाँ जल की तंगी न हो।''

श्रीकृष्ण : ''हे ऋषि ! जब आप जल का चिंतन करोगे तो उसी वक्त आपको जल पीने को मिल जाएगा।''

ऐसा कहकर श्रीकृष्ण सुभद्रा के साथ द्वारिका की ओर चल पड़े।

समय बीता। गर्मियों के दिन आये। ऋषि को बहुत प्यास लगी। तब उन्हें स्मरण हो आया कि मुझे श्रीकृष्ण ने वरदान दिया है कि जब-जब जल की जरूरत पड़े, मेरा स्मरण करना। ऋषि ने श्रीकृष्ण का स्मरण किया। घड़ीभर में देखा तो कुत्तों से घिरा हुआ, मलिन वस्त्र पहना हुआ एक चाण्डाल लघुशंका करता हुआ आ रहा है। उस चाण्डाल ने नजदीक आकर कहा : ''हे ऋषि ! आपको प्यास लगी है न ! यह पी लो।''

उत्तंग ऋषि कुपित हो गये और बोले : ''तुम्हें शर्म नहीं आती किसी ऋषि की प्यास इस रूप में बुझाने की बात करते हुए ? मैं तुम्हें श्राप देता हूँ कि...''

इतने में तो वह चाण्डाल अंतर्धान हो गया और श्रीकृष्ण वहाँ प्रगट हो गये।

ऋषि श्रीकृष्ण पर नाराज होने लगे : ''आप मुझे वरदान दे गये थे किन्तु इस ढंग से प्यास बुझाने का वरदान दे गये थे कि चाण्डाल को मेरे पास भेजा ?''

श्रीकृष्ण : ''वह चाण्डाल नहीं था अपितु स्वयं देवराज इन्द्र था। मैंने इन्द्र को मनाया था कि जब आपको प्यास लगे तब वह अपने स्वर्ग का अमृत आपको पिला जावे। किन्तु इन्द्र नहीं मान रहा था। फिर भी मेरे कहने पर उसने शर्त रखी कि : 'हे केशव ! आप कहते हो तो मैं उन्हें अमृत पिलाऊँगा किन्तु मैं इस चाण्डाल के वेष में जाकर पिलाऊँ और वे स्वीकार कर लें तभी वे स्वर्ग का अमृत पी सकेंगे।' हे ऋषि ! मैं तो आपको स्वर्ग का अमृत पिलवाकर अजर-अमर करना चाहता था। आप अच्छे रूपों में तो मुझे देखते हो किन्तु बुरे रूपों में भी सत्ता मेरी ही है- यह तत्त्वज्ञान आपको नहीं हुआ। इसीलिए आप अमृत पीने का अवसर चूक गये। चलो, फिर भी कोई बात नहीं। अब मैं जाता हूँ। जब भी आपको

प्यास लगे तब आकाश की तरफ निहारना। बादल घिर जायेंगे एवं बरसेंगे तब आप अपनी प्यास बुझा लेना। उन मेघों का नाम भी 'उत्तंग मेघ' होगा।''

तब से कहा जाता है कि मारवाड़ में जो मेघ बरसते हैं, वे 'उत्तंग मेघ' होते हैं।

चाहे जितनी तपस्या कर लो, व्रत-नियम-अनुष्ठान-यज्ञ-होम-हवनादि कर लो किन्तु जब तक सबके आदि कारण श्रीकृष्ण-तत्त्व का, राम-तत्त्व का, गुरु-तत्त्व का बोध नहीं होता तब तक सर्वात्मभाव का बोध भी नहीं होता।

अतः मानव को परमात्मप्राप्त ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु की शरण यत्नपूर्वक पाकर अपने मानव-जीवन का सदुपयोग करते हुए जब तक अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए, जब तक सर्वात्मभाव का बोध न हो जाए तब तक एक क्षण भी विश्राम नहीं करना चाहिए। किसीने ठीक ही कहा है :

चरैवेति चरैवेति चरिष्यामः निरंतरम्।

चलते रहो... चलते रहो... निरंतर चलते रहो... आगे बढ़ते रहो...

*

मन जहाँ, तुम वहाँ...

मनुष्य का अर्थ क्या है ? श्री वल्लभाचार्यजी ने कहा है : **मनसा सीवति इति मनुष्यः।** जो मन से सी ले, संबंध जोड़ ले उसका नाम है मनुष्य। 'तुम्हारा तन कहाँ है' - यह बात उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि 'तुम्हारा मन कहाँ है' - यह बात महत्त्वपूर्ण है। उसी पर तुम्हारे कर्मों का आधार होता है।

एक चाण्डाल एवं एक ब्राह्मण गंगा के किनारे उपवास करके तप कर रहे थे। एक बार तट पर मच्छीमारों को देखकर ब्राह्मण को हुआ कि : 'ये मच्छीमार कितने भाग्यशाली हैं कि ताजी-ताजी मछलियाँ पकड़कर भूनकर खाते हैं ! मैं तो भूखा रह-रहकर मर रहा हूँ।'

चाण्डाल ने मच्छीमारों को देखकर आँखें बंद कर लीं और प्रार्थना करने लगा कि : 'ये मच्छीमार पाप कर रहे हैं। मना करने पर भी रुकेंगे नहीं। हे भगवान् ! किसीका बुरा देखने के लिए मेरा जन्म नहीं हुआ है। या तो तू मुझे भला दृश्य दिखा या फिर अपने दर्शन करा।'

समय आने पर दोनों की मृत्यु हो गयी। जिस ब्राह्मण को लगा था कि 'मच्छीमार भाग्यशाली हैं' उसका जन्म तो मच्छीमारों के घर हुआ और जिस चाण्डाल ने आँखें बंद कर लीं थीं, उसका जन्म राजा के घर हुआ। दोनों बड़े हुए तो एक मच्छीमार बना और दूसरा राजा बना। दैवयोग से दोनों को अपने पूर्वजन्म की स्मृति बनी रही।

एक दिन वह मच्छीमार कुछ मछलियाँ लेकर राजा के पास आया तो वह राजा को पहचान गया और राजा भी उस मच्छीमार को पहचान गया।

राजा ने कहा : ''मित्र ! क्या हाल हैं ? याद है, हम दोनों गंगा के तट पर तपस्या करते थे ?''

मच्छीमार : ''हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है। मैं ब्राह्मण था किन्तु मच्छीमारों का चिंतन करते-करते मैं मच्छीमारों के घर आया और आप शूद्र थे किन्तु भगवान का चिंतन करते-करते राजा हुए। कृति तो दोनों की बढ़िया थी किन्तु मेरी मनोवृत्ति हल्की थी अतः मैं हल्की जगह पर आया और आपकी मनोवृत्ति ऊँची थी अतः आप बढ़िया जगह पर आये।''

...तो मानना पड़ेगा कि तुम वहीं होते हो जहाँ तुम्हारा मन होता है। अतः मन को सदैव भगवान में ही लगाने का यत्न करना चाहिए।

*

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी तरह की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीआर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जाएगी।

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

चमेली का फूल

एक बार गुरु नानकदेव अपने दोनों शिष्यों बाला और मरदाना को साथ लेकर मुल्तान पहुँचे । उनकी प्रशंसा वहाँ बहुत पहले ही पहुँच चुकी थी । भक्तजन उनके सत्कार के लिए उमड़ पड़े ।

मुल्तान के पीर बहाउद्दीन से यह सहन नहीं हुआ कि उन्हीं के गढ़ में एक परदेशी संत का उनसे बढ़-चढ़कर स्वागत हो। उन्होंने तुरन्त अपने एक मुरीद को बुलाया और उसके द्वारा दूध से लबालब भरा हुआ एक प्याला गुरु नानकदेव को भेज दिया।

दूध का प्याला देखकर मरदाना ने पूछा :

''गुरुजी ! इस कटोरे का क्या मतलब है ?''

गुरु नानक बोले : ''दूध से लबालब भरा यह कटोरा भेजकर पीर बहाउद्दीन ने मुझे यह संकेत दिया है कि मुल्तान में उनके रहते हुए किसी अन्य फकीर के लिए कोई स्थान नहीं है। एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं।''

मरदाना : ''बड़ा घमण्डी पीर है ! इसका अभिमान चूर करना चाहिए।''

गुरु नानक कुछ न बोले। वे चुपचाप उठे और बाग से चमेली का एक फूल तोड़कर ले आये। उसे दूध से भरे कटोरे में डालकर बोले : ''मरदाना ! जाओ, यह कटोरा पीर साहब को वापस दे आओ।''

इसका मतलब मरदाना की समझ में नहीं आया। पर गुरुजी की आज्ञा मानकर वह कटोरा लेकर पीर साहब के पास चला गया। भरे कटोरे पर चमेली का तैरता हुआ फूल देखकर बहाउद्दीन जितना हैरान हुआ, उससे भी अधिक गुरु नानकदेव की सूझ-बूझ पर मुग्ध हो गया। गुरु नानक के दर्शन के लिए वह इतना उत्सुक हो गया कि नंगे पैर ही अपनी कुटिया से निकल पड़ा।

यदि तुम्हारा दिल परोपकार की भावना से ओत-प्रोत हो, निर्भयता और निष्कामता से भरा हुआ हो तो प्रकृति तुम्हारे अनुकूल होने को बाध्य हो जाती है। जब रैहाना तैय्यब एकान्त में भजन करती थी तो जंगल के हिंसक पशु भी अपना स्वभाव भूलकर उसके आसपास आकर बैठ जाते थे। फिर बहाउद्दीन तो पीर थे। रास्ते में मरदाना ने पूछा :

''पीर साहब ! कुछ हमें भी तो बताइए कि क्या बात है ? फूल देखकर आप हड़बड़ा क्यों गये हैं ?''

बहाउद्दीन : ''तुम्हारे गुरु ने एक छोटा-सा फूल भेजकर नसीहत दी है कि जिस प्रकार इस नन्हें फूल का कोई भार नहीं, वह लबालब भरे कटोरे में पड़कर भी इधर-उधर तैरता है और दूध को भी वहाँ से निकलना नहीं पड़ता उसी तरह मैं भी मुल्तान में कुछ दिन रहकर चला जाऊँगा। मरदाना ! तुम्हारे गुरुजी ने यह मौन-सन्देश से मुझे वह नसीहत दी है कि जो मुझे वर्षों की तपस्या से भी प्राप्त नहीं हो सकी।''

पीर बहाउद्दीन नंगे पैर ही गुरु नानकदेव के पास पहुँचे और उन्हें अपने साथ अपनी कुटिया में ले आये। गुरु नानक ने मुस्कराकर कहा : ''एक म्यान में दो तलवारें भले ही न समा सकें, पर एक कुटिया में दो फकीर अवश्य समा सकते हैं।

*

चरवाहे ने भगवान से चूना माँगा

प्राचीन काल में किसी नगर के बाहर नदी के तट पर भगवान शिवजी का पुराना मंदिर था, जिसकी देखभाल व पूजापाठ नगर का एक पुजारी करता था। वह पुजारी नित्य प्रातःकाल उस मंदिर में साफ-सफाई व पूजा हेतु जाता था। गाँव का ही एक अनपढ़ चरवाहा भी रोज नदी किनारे अपनी गायों को चराने ले जाता था। वह पुजारी को रोज देखा करता था।

एक दिन वह चरवाहा जिज्ञासावश पुजारी के पीछे-पीछे मंदिर तक चला गया और बाहर से झाँककर देखने लगा। जब पुजारी वापस चला गया तब चरवाहा मंदिर में जाकर भगवान शंकर की मूर्ति

को लाठी से मारकर वापस आ गया। रोज पुजारी पूजा करने जाता और चरवाहा भी बाद में मूर्ति को मारने जाता। यह नित्य क्रम चलता रहा।

एक दिन भारी वर्षा के कारण नदी में बाढ़ आ गई। अतः पुजारी नदी पार करके मंदिर में पूजा हेतु नहीं जा सका और नदी के इसी किनारे से मानसिक पूजा-अर्चना कर वापस घर की ओर चल दिया। लेकिन चरवाहे ने नदी पार करके मंदिर में मूर्ति को लाठी मारने का अपना नियम नहीं तोड़ा। उसने मंदिर में जाकर भगवान शंकर की मूर्ति को लाठी मारी। जैसे ही उसने लाठी से मारा, वैसे ही भगवान शंकर उस चरवाहे पर प्रसन्न होकर बोले :

''इस विपत्ति की घड़ी में पुजारी अपनी जान बचाने के लिए उस किनारे पर से ही मेरी पूजा करके वापस चला गया लेकिन तुम नदी की बाढ़ में भी अपनी जान की बाजी लगाकर लाठी मारने का नियम पूरा करने आ गये। मैं तुम्हारे इस साहसपूर्ण कार्य को देखकर तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हें जो भी चाहिए वह माँग लो।''

उस भोले चरवाहे को तम्बाकू खाने की तलब लगी थी। उसने अपनी जेब को टटोला। देखा तो उसमें से मात्र भिगे हुए तम्बाकू की पुड़िया ही निकली। वह नदी तैरकर आया था अतः चुना तो भीगकर बह गया था। उस भोले चरवाहे को पता ही नहीं था कि उसने बाढ़ में नदी को पार करके भी मंदिर आने का अपना नियम निभाया था इसीलिए भगवान शंकरजी मुझ पर प्रसन्न होकर वरदान माँगने को कह रहे हैं। उसने तो तम्बाकू खाने के लिए थोड़ा-सा चूना ही भगवान से माँग लिया। भगवान शंकर उसे चूना देकर अंतर्धान हो गये। सच ही कहा है :

गुरु बिन ज्ञान न उपजे गुरु बिन मिटे न भेद।

अगर जीवन में सच्चे सद्गुरु का संग नहीं किया, उनके सान्निध्य का लाभ नहीं लिया तो फिर यदि भगवान भी साक्षात् प्रकट होकर वरदान देने को तत्पर हों तब भी हृदय की अज्ञानता नहीं मिटती। उस मूर्ख चरवाहे की तरह हम भी अज्ञानवश संसार की तुच्छ चीजें ही माँग बैठते हैं। इसलिए कबीरजी ने कहा है :

सद्गुरु मेरा सूरमा करे शब्द की चोट।
मारे गोला प्रेम का हरे भरम की कोट॥

व्यसनमुक्ति एवं स्वप्न-दर्शन

मैं एक गरीब पिता श्री कृष्णदेवप्रसाद की द्वितीय सन्तान हूँ। मैं विनाश के रास्ते चला जा रहा था... इतने में अपने मित्र आशिष त्रिवेदी द्वारा संत श्री आसारामजी आश्रम से प्रकाशित तीन पुस्तकें 'योगासन', 'नशे से सावधान' एवं 'यौवन-सुरक्षा' मुझे मिलीं। मैं इन पुस्तकों का अध्ययन करता एवं पूज्य बापू के फोटो के आगे रुदन करता रहता था। इससे विनाश की ओर जाती हुई मेरी जिन्दगी विकास में बदल गई। मेरे सारे व्यसन छूट गये। वाह बापू ! वाह !!

एक बार स्वप्न में पूज्य बापू मुझे अपने सत्संग में ले गये। स्वप्न में जो सत्संग के दो वचन सुनने को मिले, वे ही वचन मुझे दिनांकः २९-३-९८ के मध्याह्न सत्संग में प्रत्यक्ष रूप से भी सुनने को मिले।

मैं दीक्षा के लिए चेटीचंड शिविर में गया था। दीक्षा तो नहीं मिली किन्तु सत्संग का लाभ अवश्य मिला। मैं तभी से पूज्य बापू को अपना सद्गुरु मानता हूँ... मानता रहूँगा।

बापू ! आपने तो मुझे निहाल कर दिया !

- महेशकुमार
रेपावेल, जमुई (बिहार).

जिसको कोई बोलने-टोकनेवाला न हो, उससे अधिक अभागा इस दुनिया में कोई नहीं है। - स्वामी विवेकानन्द

पूरा राज्य भी ठुकरा दिया

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

कोई आपको धनवान् या सत्तावान् दिखे तो उसके धन एवं सत्ता को देखकर आप भी अपना धन एवं सत्ता बढ़ाने की इच्छा मत करो वरन् 'उन रूपों में भी मैं ही मजा ले रहा हूँ...' ऐसा विचार करो तो कल्याण हो जाए। वास्तव में, समग्र सत्ता एवं धन या ऐश्वर्य आपके चैतन्य से ही हैं, अतः उन्हें अन्य का मानकर नाहक दुःखी क्यों होना ?

संसार तजल्ली है मेरी
इक अंदर-बाहर मैं ही हूँ।
सब मुझीसे सत्ता पाते हैं ॥

...यह मानकर आप तो बाबा ! अपने-आप में ही मस्त रहो न !

सुनी है काशी के एक ब्रह्मचारी की कथा, जो गुरुकुल में पढ़ता था एवं भिक्षा लेने किसी सेठ के घर जाता था।

सेठ ने अपनी नौकरानी से कह रखा था कि वह ब्रह्मचारी को नित्यप्रति भोजन करवा दिया करे। कभी नौकरानी भोजन करवाती तो कभी नौकरानी की युवा लड़की।

धीरे-धीरे उस युवक ब्रह्मचारी एवं नौकरानी की युवा लड़की में एक दूसरे के प्रति आकर्षण हो गया। एक बार उस युवा लड़की ने ब्रह्मचारी से कहा :

''परसों मेरा जन्मदिवस है। तुम मुझे क्या दोगे ?''

ब्रह्मचारी : ''मैं खुद ही सेठ के यहाँ भोजन करने आता हूँ और गुरुकुल में पढ़ता हूँ। मेरे पास क्या हो सकता है ? यदि होता तो मैं अवश्य तुम्हें कुछ उपहार देता।''

युवती : ''मैंने सुना है कि हमारे यहाँ के राजा का एक नियम है। प्रतिदिन सुबह जो ब्राह्मण पहले-पहले राजा का अभिवादन करता है, उसे राजा दो-चार मासा सोना देते हैं। तुम यदि मुझे कुछ देना चाहो तो कल सुबह सबसे पहले जाकर राजा का अभिवादन करना। फिर जो सोना प्राप्त हो, उसमें से मनचाहा उपहार मुझे दे सकते हो।''

युवक ब्रह्मचारी को बात जँच गयी। रात्रि को उसे इसकी चिंता में नींद भी न आई कि 'दूसरा कोई ब्राह्मण राजा के पास पहले न पहुँच जाए।' अतः वह युवक अंधेरी रात में ही राजमहल की ओर निकल पड़ा। राजमहल में प्रविष्ट होने पर प्रहरियों को हुआ कि यह कोई चोर है। अतः उसे मार-पीटकर पकड़ लिया एवं प्रातःकाल राजा के समक्ष ले गये।

राजा : ''क्या बात है ?''

ब्रह्मचारी : ''मैं अमुक आचार्य के पास पढ़ता हूँ। हे राजन् ! मैं सच-सच बता दूँ तो बात यह है कि मैं जहाँ भोजन करने जाता हूँ, उन सेठ की नौकरानी की लड़की से मुझे प्रेम हो गया है। वह भी युवती है, मैं भी युवक हूँ। अभी तक हमने पाप तो नहीं किया है लेकिन मन से उसके लिए थोड़ा-बहुत लगाव हो गया है। हम मन से पाप कर चुके हैं। उसका जन्मदिवस आ रहा है अतः मैं उसे उपहार में अंगूठी देना चाहता हूँ। उसीने मुझे बताया था कि जो कोई सुबह-सुबह सबसे पहले आकर आपका अभिवादन करता है, उसे आप दो-चार मासा सोना देते हैं।

मैं चिंतित था कि सुबह में मुझसे पहले कोई और ब्राह्मण आपके पास पहुँच जायेगा तो मैं सोने से वंचित रह जाऊँगा और अपनी प्रेमिका को उपहार नहीं दे पाऊँगा। अतः मैं रात्रि में ही राजमहल में प्रविष्ट हो गया था। इसीलिए मार खायी। सच ही है कि जिसके हृदय में भगवान की माँग नहीं है, सांसारिक वस्तुओं की माँग है उसे तो मार खानी ही

पड़ती है। अब आप चाहे मुझे कैद करें या फाँसी का दण्ड दें, मर्जी आपकी।''

राजा को हुआ कि 'इतना सच्चा युवक ! इसे यदि गोद ले लूँ तो ? जवान है, पढ़ा-लिखा है एवं सबसे बढ़कर तो सत्यवादी है। इसके द्वारा जो होगा, अच्छा ही होगा।' किन्तु प्रगट में राजा ने कहा :

''बेटा ! बोल, तुझे कितना सोना चाहिए ? तुझे मैंने बेटा कह दिया। अब तू जितना चाहे, उतना सोना मिल जाएगा।''

ब्रह्मचारी : ''राजन् ! अब जब आप राजी हैं तो दो-चार मासा से तो काम चलेगा नहीं...''

राजा : ''जितना चाहिए उतना माँग ले।''

ब्रह्मचारी सोच में पड़ गया कि 'क्या कहूँ ?' तब उसे चिंतित देखकर राजा ने कहा : ''ठीक है, अभी जा। दिनभर सोचकर कल इसी समय पर आ जाना। फिर जितना माँगेगा, उतना सोना मिल जायेगा।''

ब्रह्मचारी चला गया एवं सोचने लगा कि 'हजार मुद्राएँ माँग लूँ तो कुछ तो उस युवती को दूँगा और कुछ अपने पास रखूँगा। फिर अपना भोजन आप बनाकर खाऊँगा एवं मजे से रहूँगा। किन्तु पढ़ने के बाद तो वे हजार मुद्राएँ भी समाप्त हो जाएँगी। फिर कंगाल-का-कंगाल। अगर दस हजार मुद्राएँ माँग लूँ तो ? मेरे लिए तो पर्याप्त हो जाएगा किन्तु साथी कहेंगे कि तू तो मालदार हो गया और हम जैसे-के-तैसे रह गये। तो फिर दस लाख स्वर्णमुद्राएँ माँग लूँ। किन्तु अगर दस लाख मागूँगा तो उनको रखने की तकलीफ होगी। चोर-लुटेरे लूट न लें, इस बात का भय भी रहेगा। अतः राजा से दो-चार-दस-लाख मुद्राएँ तो क्या, पूरा राज्य ही क्यों न माँग लूँ ?''

दूसरे दिन नियत समय पर ब्रह्मचारी पहुँचा राजा के पास एवं बोला : ''राजन् ! मेरे मन में तो ऐसा विचार आता है कि दस-पाँच लाख मुद्राओं से भी काम नहीं चलेगा। यदि आपका पूरा राज्य ही मुझे मिल जाए तो मैं निश्चिंत और निर्भय होकर अपनी जिंदगी गुजार सकूँगा।''

राजा : ''बात तो ठीक है। अब मैं बूढ़ा हो चला हूँ। अभी तक मैंने बहुत खाया-पिया, भोग भोगे, राज्य किया किन्तु अंत में कुछ भी हाथ न लगा। शरीर जल जाये उसके पहले मैं एकान्त में जाकर क्यों न अपनी भोग-वासनाओं को जला डालूँ ? तू यह राज्य संभाल। अब मैं वन में जाकर परमात्म-राज्य को प्राप्त करूँगा। मानो, परमात्मा ने तुझे भेजकर मुझ पर ही कृपा की है।''

ब्रह्मचारी : ''राजन् ! रुकिये। क्या यह राज्य-शासन दलदल है ? आप इससे ऊब चुके हैं ? अगर आप इससे ऊबकर परमात्म-राज्य पाने के लिए एकांत अरण्य में जाना चाहते हैं तो फिर मैं इस झंझट में क्यों पड़ूँ ? मैं अभी से यह चला।''

यह कहकर वह ब्रह्मचारी शीघ्रता से राज-दरबार से निकल पड़ा। फिर उस युवती के पास जाकर उसे सारा वृत्तांत सुनाकर हाथ जोड़ते हुए उसने कहा :

''देवी ! तुम तो मेरी गुरु निकली। तुम्हारी ही कृपा से मुझे यह ज्ञान हो सका कि राज्य भी एक दलदल है। राज्य पाने के बाद भी व्यक्ति शांति ही चाहता है। उसी शांति के द्वार मेरे लिए तो अभी से खुले हैं, तो क्यों न मैं अभी से उसे पा लूँ ? मैं तो चला उसी परमात्म-राज्य को पाने।''

यह कहकर वह ब्रह्मचारी युवक निकल पड़ा वास्तविक आत्मराज्य को पाने के लिए।

'ज्ञान क्या है ? सत्य क्या है ? असत्य क्या है ? मैं कौन हूँ ?' - इस बात का ज्ञान बिना ईश्वर की कृपा के नहीं होता। जब ईश्वर की कृपा होती है तब सत्यासत्य का विवेक जगता है। जब विवेक जगता है तब आदमी राज्य को भी ठुकराकर परमात्म-राज्य पाने के लिए चल पड़ता है एवं कामयाब भी हो जाता है।

आप अपने हृदय में न शत्रु को रखना न मित्र को रखना। हृदय में तो केवल भगवान को ही रखना। हाथों से संसार का व्यवहार करके फिर उस व्यवहार को भी भूल जाना।

गौमाता : रोग-दोषनिवारिणी

[गतांक का शेष]

गोमूत्र का सेवन करने के लिए एक सफेद सूती कपड़ा लें। कपड़े को धोकर साफ करके सुखा लें। इस कपड़े की चार या आठ तह बना लें। गोमूत्र एकत्र करके इस कपड़े की चार या आठ तहों से छान लें। उसके बाद गोमूत्र का प्रयोग करें। गोमूत्र के औषधीय गुण निम्नवर्णित रोगों में उपयुक्त हैं :

(१) कब्ज, पेट फूलना, खट्टी डकार आना : गरिष्ठ भोजन, अधिक मसालेदार सब्जी, तला हुआ भोजन तथा अधिक खाने पर कब्ज, पेट फूलना, खट्टी डकार आना आदि की समस्या उत्पन्न होती है। तीन तोला स्वच्छ व ताजा गोमूत्र स्वच्छ कपड़े से छानकर उसमें आधा माशा सादा नमक मिलाकर पियें। थोड़ी देर के बाद ही पेट साफ हो जाएगा। यदि किसी बच्चे का पेट फूल जाय तो एक चम्मच स्वच्छ गोमूत्र पिला दें। तुरंत आराम मिलेगा।

(२) अम्ल पित्त (एसिडिटी) : इस रोग में रोगी के मुँह में खट्टा पानी भरना, खट्टी डकार आना, पेट में जलन होना, पेट में दर्द होना, पेट की जलन से उल्टी होना, भूख न लगना आदि लक्षण होते हैं। रोगी सुबह उठते ही गाय का प्रथम मूत्र एक गिलास या कटोरे में एकत्र करके एक-दो घूँट से शुरू करे तथा धीरे-धीरे १०-१५ दिन में पाँच-छः घूँट तक बढ़ा ले। शुरू के दिनों में २-३ बार शौच के लिए जाना पड़ सकता है, जो १०-१५ दिन में स्वतः ही ठीक हो जाएगा। दो माह तक इस प्रकार गोमूत्र का सेवन करने से रोग जड़ से नष्ट हो जाएगा।

(विशेष विवरण हेतु देखें : 'कल्याण' १९९६, वर्ष ७०, अंक ४, पृष्ठ ५४९)

(३) जुकाम, नजला, श्वास, दमा, उच्च रक्तचाप : जुकाम, नजला तो सामान्यतः सभी व्यक्तियों में पाये जाते हैं। इनमें नाक बहना, बार-बार छींकना, स्वरभंग होना तथा बाद में सिर के बाल गिरना या असमय सफेद होना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। जुकाम, नजला में गोमूत्र के चमत्कारी लाभ बताये गये हैं। रोगी को एक प्याले के चौथाई भाग में साफ शुद्ध गोमूत्र लेकर उसमें एक चौथाई चम्मच फूली हुई फिटकरी मिलाकर सेवन करनी चाहिए। दमा के रोगी को छोटी बछड़ी का एक तोला मूत्र नियमित पीने पर लाभ होता है। उच्च रक्तचाप के रोगी को गोमूत्र बहुत लाभ करता है।

(४) मधुमेह या डायबिटीज : मधुमेह के रोगी हर जगह मिलते हैं। अधिक चाय, गरिष्ठ भोजन तथा अन्य कारणों से रक्त में शक्कर की मात्रा बढ़ जाती है। मधुमेह के रोगी का रक्तचाप असंतुलित हो जाता है तथा सभी रोगों के लिए सुग्राह्यता बढ़ जाती है। विभिन्न प्रकार की दवाओं के सेवन से कभी-कभी रक्त में शक्कर की मात्रा इतनी कम हो जाती है कि रोगी को चक्कर आना तथा बेहोशी की दशा होना भी सामान्य-सा हो जाता है। इस रोग के रोगी यदि बिना ब्याई गाय का मूत्र प्रतिदिन एक से डेढ तोला सेवन करें तो बहुत लाभ होता है।

(५) सफेद दाग (ल्यूकोडरमा) : इसमें चेहरे या शरीर के अन्य भागों पर सफेद दाग पड़ जाते हैं जिससे चेहरे की कांति एवं सुंदरता घट जाती है। इसकी चिकित्सा हेतु गोमूत्र में बावची पीसकर रात में सफेद दागों पर लगायें तथा सुबह उठकर गोमूत्र से ही धोयें। कुछ दिन में दाग मिटने लगेंगे।

(६) गले का कैंसर : गले का कैंसर होने पर रोगी को खाने में कठिनाई होती है। गले में गाँठ पड़ जाती है। खाना न खा पाने के कारण रोगी अशक्त हो जाता है तथा चलने-फिरने में भी अक्षम रहता है। इसके उपचार के लिए देशी गाय का मूत्र १०० मि.ली. तथा सुपारी के बराबर गाय का ताजा गोबर, दोनों को मिलाकर स्वच्छ वस्त्र से छान लें। सुबह नित्यकर्म से निवृत्त होकर मंजन करने के पश्चात् उसे निराहार लें। चार माह में पूर्ण आराम मिल जाता है।

(विशेष विवरण हेतु 'कल्याण' १९९५, वर्ष ७०, अंक ५, पृष्ठ ५९७ देखें)

(७) यकृत व प्लीहा का बढ़ना : यकृत व प्लीहा बढ़ने पर पेट बढ़ जाता है, भूख कम लगती है, अपच, कब्ज, एसिडिटी, अशक्ति आदि लक्षण उभरते हैं। इसमें रोगी को निम्न प्रकार के प्रयोग करने चाहिए : **(अ)** पाँच तोला गोमूत्र में एक चुटकी नमक मिलाकर लेवें। **(आ)** पुनर्नवा का काढ़ा और गोमूत्र समान भाग में मिलाकर लेवें। **(इ)** गोमूत्र में कपड़ा भिगोकर हल्की-सी गर्म की हुई ईंट पर लपेटकर पेट पर हल्की-हल्की सिकाई करें।

(८) जलोदर : जलोदर रोग होने पर रोगी का सारा शरीर फूल जाता है। कभी-कभी हिलने-डुलने में भी कठिनाई होती है। साँस भी बड़ी कठिनाई से ली जाती है तथा खाना निगलना मुश्किल हो जाता है। ऐसे रोगी को नियमित रूप से गोमूत्र का सेवन बहुत लाभकारी होगा।

(९) दाद-खाज-खुजली आदि चर्मरोग : गाय के मूत्र में कड़ुवा जीरा पीसकर, मिलाकर उसका लेप करें तथा नीम के पत्तों को पानी में उबालकर उससे स्नान करें। बहुत शीघ्र ही चर्मरोगों से छुटकारा मिलता है ।

(१०) पीलिया या पाण्डुरोग : इसमें रोगी की त्वचा तथा आँख की पुतलियाँ पीली पड़ जाती हैं। भूख न लगना, कब्ज रहना, अजीर्णता तथा अशक्ति आदि लक्षण प्रकट होते हैं। इसके लिए १५ दिन तक हररोज गोमूत्र २००-२५० मि.ली. (एक गिलास) पीना चाहिए। इससे अवश्य लाभ होता है।

(क्रमशः)

धनियाँ

धनियाँ सर्वत्र प्रसिद्ध है। भोजन बनाने में उसका नित्य प्रयोग होता है। हरा धनियाँ के विकसित हो जाने पर उस पर हरे रंग के बीज की फलियाँ लगती हैं। वे सूख जाती हैं तो उन्हें सूखा धनियाँ कहते हैं। विशेषकर गुजराती गृहिणियाँ सब्जी खरीदने के पश्चात् अंत में हरा धनियाँ, अदरक व हरी मिर्च जरूर खरीदती हैं। सब्जी, दाल जैसी खाद्य चीजों में काटकर डाला हुआ हरा धनियाँ उसे सुगंधित एवं गुणवान बनाता है। हरा धनियाँ गुण में ठंडा, पित्तदोष को शांत करनेवाला, रुचिकारक व पाचक है। इससे भोज्य पदार्थ अधिक स्वादिष्ट व रोचक बनते हैं। हरा धनियाँ केवल सब्जी में ही उपयोग में आनेवाली वस्तु नहीं है वरन् उत्तम प्रकार की एक औषधि भी है। इसी कारण अनेक वैद्य खुले हाथ उसका उपयोग करने की सलाह देते हैं।

गुणधर्म : हरा धनियाँ गुण में ठंडा, स्वाद में कटु, कषाय, स्निग्ध, पचने में हल्का, मूत्रल, दस्त बंद करनेवाला, अरुचिनाशक, जठराग्निवर्द्धक, पित्तप्रकोप का नाश करनेवाला एवं गर्मी से उत्पन्न तमाम रोगों में भी अत्यंत लाभप्रद है।

* धनियाँ का औषध-प्रयोग *

(१) बुखार : अधिक गर्मी से उत्पन्न बुखार या टायफायड के कारण यदि दस्त में खून आता हो तो हरे धनियाँ के २५ मि.ली. रस में मिश्री या ग्लूकोज डालकर रोगी को पिलाने से लाभ होता है।

ज्वर से शरीर में होती जलन पर इसका रस

लगाने से लाभ होता है ।

(२) आंतरदाह : चावल में पानी के बदले हरे धनियाँ का रस डालकर प्रेशर कूकर में पकायें। फिर उसमें घी तथा मिश्री डालकर खाने से किसी भी रोग के कारण शरीर में होनेवाली जलन शांत होती है।

(३) अरुचि : सूखा धनियाँ, इलायची व कालीमिर्च का चूर्ण घी और मिश्री के साथ दें।

हरा धनियाँ, पुदीना, जीरा, कालीमिर्च, सैंधा नमक, अदरक व मिर्ची पीसकर उसमें जरा-सा गुड़ व नींबू का रस मिलाकर चटनी तैयार करें। भोजन के समय उसे खाने से अरुचि व मंदाग्नि मिटती है।

(४) तृषा रोग : हरे धनियाँ के ५० मि.ली. रस में मिश्री या हरे अंगूर का रस मिलाकर पिलायें।

(५) सगर्भा की उल्टी : हरे धनियाँ के रस में हल्का-सा नींबू निचोड़ लें। यह रस एक-एक चम्मच थोड़े-थोड़े समय पर पिलाने से लाभ होता है।

(६) रक्तपित्त : (अ) सूखा धनियाँ, अंगूर व बेदाणा का काढ़ा बनाकर पिलायें।

(ब) हरे धनियाँ के रस में मिश्री या अंगूर का रस मिलाकर पिलायें। साथ में नमकीन, तीखे व खट्टे पदार्थ खाना बंद करें और सादा, सात्त्विक आहार लें।

(७) बच्चों के शूल, आम व अजीर्ण में : सूखा धनियाँ और सोंठ का काढ़ा बनाकर पिलायें।

(८) बच्चों की आँखें आने पर : (अ) सूखे पिसे हुए धनियाँ की पोटली बाँधकर तथा पानी में भिगोकर उसे बार-बार आँखों पर घुमायें।

(ब) हरा धनियाँ धोकर, पीसकर उसकी एक-दो बूँदें आँखों में डालो। आँखें आना, आँखों की लालिमा, आँखों की खील, गुहेरी एवं चश्में के नंबर दूर करने में यह लाभदायक है।

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ७१ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया सितम्बर तक अपना नया पता भिजवा दें।

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद सद्गुरुदेव के प्रति अमेरिका पधारे हुए पूज्य श्री नारायण स्वामी का पत्र

परम पूज्य, विश्ववंद्य, सच्चिदानंदस्वरूप, लीलाधारी, शिष्यों के संतापों को हरण करनेवाले, जगद्गुरु संत श्री आसारामजी बापू के श्रीचरणों में नारायण के कोटि-कोटि नमन!

यहाँ केनेडा में आकर आज दूसरे दिन की सुबह में अपने ध्यान-भजन-साधना-संध्या के समय मैं यह पत्र लिख रहा हूँ। आपश्री जब केनेडा पधारे हुए थे तब जिस कमरे में आपश्री का निवास था उसी कमरे में कल दोपहर ३-३० बजे से मैं रुका हूँ। दिव्य आध्यात्मिक परमाणुओं से स्पन्दित इस कमरे ने मेरे हृदय में भी वैराग्य को जागृत कर दिया है। अनुभव हो रहा है कि ब्रह्मवेत्ताओं के परमाणु कितने प्रभावशाली होते हैं। सुबह से ही ईश्वर-चिंतन इतना बढ़ा है, संसार की असारता इतनी दृढ़ बनी है कि लोक-व्यवहार से बहुत उपरामता आ रही है।

मैं 'विवेकचूडामणि' ग्रंथ पढ़ रहा था :

यथापकृष्टं शैवालं क्षणमात्रं न तिष्ठति ।
आवृणोति तथा माया प्राज्ञं वापि परांगमुखम् ।।

'जिस प्रकार शैवाल को जल पर से एक बार हटा देने पर वह क्षणभर भी अलग नहीं रहता, तुरंत ही जल को फिर से ढाँक लेता है, उसी प्रकार आत्मविचारहीन विद्वान को भी माया फिर से घेर लेती है।'(३२५)

'जैसे असावधानी के कारण हाथ से छूटकर

सीढ़ियों पर गिरी हुई गेंद एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर बराबर नीचे गिरती ही चली जाती है वैसे ही यदि चित्त अपने लक्ष्य ब्रह्म से हटकर थोड़ा-सा भी बहिर्मुख हो जाता है तो फिर बराबर नीचे की ओर गिरता ही चला जाता है।' (३२६)

'विषयों की प्रवृत्ति से मनुष्य आत्मस्वरूप से गिर जाता है और जो एक बार स्वरूप से गिर गया उसका निरंतर अधःपतन होता ही रहता है। पतित पुरुष का नाश हो जाता है। उसका फिर उत्थान तो प्रायः कभी देखा नहीं जाता। इसलिए सम्पूर्ण अनर्थों के कारणरूप संकल्प को त्याग देना चाहिए।' (३२८)

'अतः विवेकी और ब्रह्मवेत्ता पुरुष के लिये समाधि में प्रमाद करने से बढ़कर और कोई मृत्यु नहीं है। समाहित पुरुष ही पूर्ण आत्मसिद्धि प्राप्त कर सकता है, इसलिये सावधानीपूर्वक चित्त को समाहित करो।' (३२९)

हे गुरुदेव! मैं आपसे दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि मेरा मन संसार के विषय-विकारों में कहीं भटक न जाय। जवानी, धन-संपत्ति और अविवेक-इन तीनों में से कोई एक भी नाश करने के लिए काफी है तो जहाँ तीनों एक साथ हों, वहाँ कहना ही क्या ?

आपकी कृपा ही, आपके संकल्प ही यहाँ विदेश में मुझे बचा पाये हैं... बचा रहे हैं।

मेरा चित्त समाहित रहे, आत्माभिमुख रहे और आत्मसिद्धि को मैं प्राप्त कर पाऊँ, ऐसी मुझे शक्ति देना। आपके चरणों में फिर से नमन !

आपका
'....'

६ अगस्त, १९९८

सिन्धीभाषी जनता के लिए खुश खबरी

उन सिन्धी पाठकों के लिए यह स्वर्णिम अवसर है जो सिन्धी भाषा जानते हों लेकिन सिन्धी लिपि पढ़ना न जानते हों। संत श्री आसारामजी आश्रम से सिन्धी भाषा में प्रकाशित आध्यात्मिक पत्रिका **'दरवेश दर्शन'** अब सिन्धी लिपि के अलावा देवनागरी लिपि में भी प्रकाशित होने जा रही है। अब वे पाठक सिन्धी भाषा में प्रकाशित **'दरवेश दर्शन'** को देवनागरी लिपि में पढ़कर संतों-महापुरुषों के सत्संग से अपने जीवन को उन्नत बनाकर प्रभुभक्ति का अमृतपान कर अपने को धन्य कर सकेंगे।

ज्ञान, भक्ति और योगमार्ग के समर्थ आचार्य, ब्रह्मनिष्ठ पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू नगर, महानगर व देश-विदेश में सत्संग कार्यक्रमों के माध्यम से ज्ञानामृत का प्रसाद बाँटकर लोगों को एक नई दिशा प्रदान कर रहे हैं, जीवन जीने की कला सिखा रहे हैं। श्रेष्ठ जीवन की कुँजियाँ बताकर जनता का जीवन उन्नत कर रहे हैं। गाँवों एवं नगरों-महानगरों के श्रद्धालुजनों के श्रद्धा व प्रेम-आग्रह के परिणामस्वरूप पूज्यश्री स्थान-स्थान पर पहुँचकर हरिरस का आस्वादन कराते हैं।

पुंसरी (बायड-गुजरात) : ४ अगस्त को पूज्यश्री पुंसरी पधारे जहाँ स्थानीय ग्रामवासियों के अलावा विभिन्न ग्रामीण अंचलों से आये हुए हजारों लोगों ने गीता-भागवत सत्संग समारोह का लाभ उठाया। विश्वप्रसिद्ध पूज्य बापू को अपने बीच पाकर ग्राम्यजन धन्य हो उठे। हरिकथा की महत्ता व जीवन जीने की कला समझाते हुए पूज्यश्री ने कहा :

''हरिकथा ही कथा, बाकी सब जग की व्यथा। अपने लिए, अपने स्वार्थ के लिए तो सभी जीते हैं पर जीना भला है उसका जो जीता है औरों के लिए।''

मोडासा (गुज.) : ५ अगस्त '९८ के दिन यहाँ की श्रद्धालु व संतप्रेमी जनता को आश्रय के विषय में बताते हुए पूज्य गुरुदेव ने कहा :

''हीन आश्रय भविष्य को अंधकारमय बनाता है जबकि श्रेष्ठ आश्रय बहुत हितकारी होता है। अतः मानव को श्रेष्ठ आश्रय ही लेना चाहिए।''

स्थानीय भाषा व लोकभोग्य शैली में पूज्यश्री के अमृतवचन पाकर सभी आनंदमग्न थे। मोडासा के मार्केट का उद्घाटन पूज्यश्री के पावन करकमलों द्वारा अनुकूल ग्रह-नक्षत्र की शुभ वेला में संपन्न हुआ।

सूरत आश्रम : यहाँ श्रावणी पूर्णिमा व रक्षाबंधन के पावन पर्व पर दिनांक : ७ से ९ अगस्त '९८ के दौरान् सत्संग समारोह आयोजित किया गया। देश भर के हजारों पूर्णिमा दर्शन व्रतधारी भक्तों ने पूज्य गुरुदेव के दर्शन कर अन्न-जल ग्रहण किये। सत्संग के दौरान् अपने भीतर के विकारों को निकालने की सरल युक्ति बताते हुए पूज्यश्री ने कहा :

''हे प्रभु ! मेरा हृदय आपका निवास-स्थान है, आपका घर है। इसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकाररूपी चोर घुस गये हैं और मैं अकेला हूँ। उन्हें निकाल नहीं पा रहा हूँ। हे मेरे प्रभु ! हृदय मेरा है पर घर तो आपका है। आपके घर में चोर घुसे तो लोग क्या कहेंगे ? यह आपकी इज्जत का सवाल है।''

तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है :

मम हृदय भवन प्रभु तोरा ! जिसमें बसत बहु चोरा।

रक्षाबंधन आनंदोल्लास से मनाने के बाद १५ अगस्त के दिन श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी पर विशाल जनमेदनी के कारण विशाल सत्संग-प्रांगण भी छोटा पड़ने लगा। जय-जयकार व हर्षोल्लास से सारा गगनमण्डल गुँजने लगा।

नन्दघर आनंद भयो, जय कन्हैया लाल की...

उस माखनचोर की याद में पूज्यश्री को अपने हाथों द्वारा मक्खन बाँटते देखकर लीलाधर श्रीकृष्ण की ५२२० वर्ष पुरानी लीला आँखों के सामने दिखने लगी। जन्माष्टमी की बधाई देते हुए पूज्यश्री ने कहा :

''श्रीकृष्ण को समझना हो, जन्माष्टमी का पूरा लाभ उठाना हो तो शरीर स्वस्थ और बुद्धि तीव्र होना चाहिए। तभी श्रीकृष्ण का उद्देश्य समझ में आयेगा, श्रीकृष्ण का आत्म-तत्त्व समझ में आयेगा और आपको आत्मा का दर्शन हो जाएगा। आपका आत्मविकास हुआ तो मानो श्रीकृष्ण की आत्मा का दीदार हो गया।''

श्रीकृष्ण की महिमा के बारे में पूज्यश्री ने कहा :

''सुखस्वरूप आत्मा को जान लेना चाहिए। किसी भी कीमत पर, अपने आनंदस्वरूप आत्मा का, श्रीकृष्ण-तत्त्व के दीदार का ही हमारा उद्देश्य होना चाहिए।''

बालिकाओं द्वारा रंग-बिरंगे परिधानों में मनमोहक रास-गरबा प्रस्तुत किया गया।

*

हिम्मतनगर-मेहसाना के गाँवों में सेवायज्ञ

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा विभिन्न स्थानों पर जनता-जनार्दन की सेवा हेतु अनेक कार्यक्रम समय-समय पर आयोजित किये जाते हैं। गरीबों तथा असहायों के बीच पहुँचकर उनकी सेवा-सहायता की जाती है। इसी सेवायज्ञ को आगे बढ़ाते हुए पूज्य बापू की सुपुत्री पूजनीया भारती देवी द्वारा हिम्मतनगर तहसील एवं मेहसाना के गांभोई, वसई, थामणवा, गढ़खरा, मूंछनीपाड़, गढ़ड़ा, नवागाँव, कृष्णकंपा, कृपाकंपा, कांकरोल, राजपुरा आदि ४८ गाँवों में गरीबों की मदद हेतु सेवा अभियान चलाया गया जिसमें विभिन्न प्रकार से गरीब-निराश्रितों की सहायता की गई। ऐसी बस्तियों में जहाँ लोगों के तन पर पूरे वस्त्र भी नहीं थे, जहाँ का पुरुषवर्ग व्यसनों के जाल में बुरी तरह से फँसा था, वहाँ जाकर वस्त्र तथा दक्षिणा वितरित की गयी। तम्बाकू-गुटखा, पान-मसाला, बीड़ी-सिगरेट आदि बुरे व्यसनों से ग्रस्त लोगों को उनसे होनेवाली हानियों से अवगत कराया गया। इस कार्य में प्रत्येक गाँव के बाशिन्दों ने उत्साहपूर्वक सहयोग दिया।

लौकिक शिक्षा के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति के लिए पूजनीया भारती देवी ने विभिन्न स्कूलों में जाकर विद्यार्थियों को वैदिक मंत्रों का महत्त्व बताते हुए उनसे 'हरि ॐ' का उच्चारण करवाया। विद्यार्थियों के जीवन को उन्नत बनाने हेतु उन्हें

आसन, प्राणायाम तथा उनके योग्य साधना के साधारण नियमों को समझाते हुए उनसे साधना-मार्ग में आगे बढ़ने का संकल्प कराया। साथ ही, आज की युवा पीढ़ी के पतन का कारण बन रहे दुर्व्यसनों से बालकों को सचेत करते हुए उन्हें एक सुखी एवं समृद्ध जीवन जीने का ढंग बताया एवं सुसंस्कृत विश्व की रचना के लिए उन्हें प्रेरित किया । इसके अतिरिक्त गरीब, बच्चों में वस्त्र भी वितरित किये ।

जनसेवा तथा जनजागृति हेतु आयोजित इस सेवायज्ञ की खूब प्रसंशा प्रत्येक गाँव में की गई । कोई भी इस कार्यक्रम से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका । सभी आनन्दित हुए ।

*

लुधियाना साधना परिवार ने जन्माष्टमी के पर्व पर अलग-अलग मंदिरों में १२ स्टाल लगाकर पू. बापू के सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार किया। 'ऋषि प्रसाद' का सेवाकार्य भी वहाँ प्रारंभ हो गया है। इस कार्य में महिला समिति भी सेवारत है। समिति द्वारा 'श्री आसारामायण' का पाठ एवं सत्संग-कार्यक्रम भी किये जा रहे हैं।

पूज्य बापू के अन्य सत्संग-कार्यक्रम

दिनांक.	शहर	कार्यक्रम	समय	स्थान	संपर्क फोन
२८ से ३० अगस्त '९८	कांकरोली	सत्संग समारोह	सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३-३० से ५-३०	हायर सेकेन्डरी स्कूल ग्राउण्ड, कांकरोली, राजस्थान।	(०२९५२) २०७००, २३७२९.
३ से ६ सितम्बर '९८	पुष्कर	शिविर जाहिर सत्संग	... रोज शाम ३-३० से ५-३०	मेला ग्राउण्ड, पुष्कर, अजमेर (राजस्थान).	(०१४५) ६२२९३९, ४२८२३४, ४२०३२४, ७२१३९, ६२३५१६.
९ से १३ सितम्बर '९८ ११ सितम्बर	श्री गंगानगर	सत्संग समारोह विद्यार्थियों के लिए	सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३-३० से ५-३० सुबह ९-३० से ११-३०	विहाणी चिल्ड्रन एकेडमी के सामने, गगनपथ, श्री गंगानगर, राजस्थान।	२०६४५, २७०९२, २१५६९, २३३६९.
१६ से २० सितम्बर '९८ १८ सितम्बर	हिसार	सत्संग समारोह विद्यार्थियों के लिए	सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३-३० से ५-३० सुबह ९-३० से ११-३०	पुरानी पुलिस लाईन ग्राउण्ड, हिसार, हरियाणा।	२५६९७, ३४४९१, ३८३७४, ३०६४९, ३७७९६.
२३ से २७ सितम्बर '९८	जालंधर	सत्संग समारोह			(०१८१) २९५६७४, २७६८१२.
१ से ४ अक्तूबर '९८	लुधियाना	शिविर			(०१६१) ८४४८७५, ८४५४७३, ५३६६०१३, ५३५३९२, ४७१७००.
५ से ७ अक्तूबर '९८	दिल्ली	विद्यार्थी शिविर			५०१६९७१, ५४१५८७०, ५७२९३३८, ५७६४१६१.
८ से ११ अक्तूबर '९८	मेरठ	सत्संग समारोह			(०१२) ५४०७४१, ५४४५१८, ६४७०४४, ५४३३७८.
४ से ८ नवम्बर '९८	पश्चिम दिल्ली	सत्संग समारोह			५५८१३०४, ५६८३८२५, ५४६८५३३, ५७२९३३८, ५७६४१६१.
१८ से २२ नवम्बर '९८	पटना	सत्संग समारोह		गांधी मैदान, पटना, बिहार।	

पूर्णिमा दर्शन : * ५ सितम्बर पुष्कर-अजमेर में * ५ अक्तूबर दिल्ली में

सवा पाँच हजार वर्ष पहले भगवान श्रीकृष्ण ने गोकुल-वृन्दावन के ग्वाल-गोपियों को मक्खनचोरी की लीला करके मक्खन खिलाया था... आज श्रीकृष्ण की उसी लीला का स्मरण कराते हुए पूज्य बापू ने भी जन्माष्टमी के पर्व पर भक्तजनों को अपनी नूरानी निगाहों से निहाल करते हुए अपने पावन करकमलों से मक्खन लुटाया।

सूरत आश्रम में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के पर्व पर आयोजित सांस्कृतिक उत्सव कार्यक्रम में प्रस्तुत पारंपरिक गुजराती दांडिया-रास का आनन्द लूटते हुए सूरत के भक्तगण।

REGISTRED WITH R.N.I. UNDER NO. 48873/91 LICENSED TO POST W/O PRE-PAYMENT : AHMEDABD PSO LICENCE NO. 207 Regd. No. GAMC/1132. BOMBAY BYCULLA PSO LICENCE NO. 03 Regd. No. MH/MNV-02.